पूज्य भाईश्री शशीभाईकी मंगल जन्म जयंतीके प्रसंग पर धर्मात्माओंकी प्रतिकृति स्थापना महोत्सव

(बुधवार, १९ दिसम्बर से रविवार, २३ दिसम्बर २००१ तक)

स्मरण संचिका

श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर

श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर

मुख्य व्यवस्था कार्यालय : **श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट**
५८०, जूनी माणेकवाड़ी,
भावनगर-३६४००१
फोन : (०२७८) ४२३२०७ / ५१५००५
Email : satshrut@satshrut.org
Website : www.satshrut.org

सह व्यवस्था कार्यालय : **वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट**
श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट
५८०, जूनी माणेकवाड़ी,
भावनगर-३६४००१
फोन : (०२७८) ४२३२०७ / ५१५००५

सत्संग स्थल : **श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर**
१९४२-बी, `चांदनी' पूज्य शशीप्रभु मार्ग,
कृष्णनगर,
भावनगर-३६४००१

पूज्य भाईश्री शशीभाई समाधि स्थल : **रुवा गाँव**
भावनगर, हवाई - अड्डेके पास, मेईन रोड़ पर

अनुक्रमणिका

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
०१	श्री वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्टका परिचय	०५
०२.	श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्टका परिचय	०७
	आध्यात्मिक जीवन परिचय	
०३	श्रीमद् भगवत् कुंदकुंदाचार्यदेव	१४
०४	परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी	१९
०५	अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी	४१
०६	प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन	५९
०७	पुरुषार्थमूर्ति पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी	७५
०८	सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई	१०९
	गुण-संकीर्तन	
०९	श्रीमद् भगवत् कुंदकुंदाचार्यदेव	१३१
१०	परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी	१३५
११	अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी	१३७
१२	प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन	१४०
१३	पुरुषार्थमूर्ति पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी	१४२
१४	सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई	१४४
१५	अभिनंदन पत्र	१४६
१९	स्तुति एवं भक्ति	१४८
२०	श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत : पत्रांक - ५६९	१६१
२१	पूज्य बहिनश्री के वचनामृत : बोल - ४१२	१६४
२२	पूज्य गुरुदेवश्री के वचनामृत : बोल - १२४	१६५
२३	श्री समयसार गाथा : २०६	१६६
२४	श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक - ७५१	१६७

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
२५	पूज्य बहिनश्रीकी तत्त्वचर्चा स्वानुभूतिदर्शन : बोल - ३५१-३५२	१६८
२६	क्षमापना	१६९
२७	उपलब्ध प्रकाशन हिन्दी एवं गुजराती	१७१
२८	प्रकाशीत हुए पुस्तकोंकी प्रत संख्या	१७४

श्री वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्टका संक्षिप्त परिचय

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके पुनीत प्रभावनायोगसे जिनशासनमें सनातन दिगम्बर जैनधर्मका युग प्रवर्तीत हुआ। दिगम्बर आचार्यों द्वारा लिखीत अनेक शास्त्रों पर पूज्य गुरुदेवश्रीने प्रवचन करके मोक्षमार्गको प्रसिद्ध किया और मुक्तिसुखके पिपासु ऐसे अनेक भव्यजीवोंने इस प्रवचनामृतका रसपान किया।

पूज्य गुरुदेवश्रीकी दिव्य देशनाको श्रवण करनेवाले अनेक जीवोंमें पूज्य भाईश्री शशीभाई एक रत्नके समान झलक रहे थे। पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रभावनायोगको देखकर उन्हें ऐसी भावना हुई कि, यदि इस अलौकिक जगहितकर मार्गकी प्रभावना करनेमें 'पेट पर पाटा बाँधकर' अर्थात् (खाना कम खाकर भी समर्पण करना पड़े) तो भी करना चाहिये।

सोनगढ़में जब परमागममंदिरकी पंच कल्याणक प्रतिष्ठा चल रही थी, तब महान पंच परमागम एवं अन्य आध्यात्मिक शास्त्र सर्व सामान्यजनको प्राप्त हो, ऐसी पूज्य भाईश्रीसे प्रेरणा पाकर एवं पूज्य गुरुदेवश्रीके आर्शिवाद पाकर एक सद्गृहस्थने उपरोक्त ट्रस्टकी स्थापना की। पूज्य गुरुदेवश्रीने शास्त्र प्रकाशनके समाचार सुनते ही अत्यंत प्रमोद व्यक्त किया और अनेकबार प्रवचनोंमें भी इस बातका उल्लेख किया करते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा हुए प्रवचनोंको पुस्तकाकाररूपमें प्रकाशित करनेका भी सुनिश्चित किया गया। इस ट्रस्टमेंसे प्रकाशित पुस्तकोंकी लागत कीमतके २५% कम करके वितरण करनेकी नीति निश्चित

की गई। `श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट' द्वारा भी पुस्तकोंकी कीमत कम करने हेतु कुछ समयके लिये आर्थिक सहाय मिली थी।

इस ट्रस्टके अंतर्गत अनेक शास्त्रोंका प्रकाशन हुआ। जिसकी सूची इस पुस्तिकामें अन्यत्र दी गई है। ज्ञानीपुरुषोंकी कृपादृष्टिके फलस्वरूप आज भी अनेक शास्त्रोंका नियमित प्रकाशन हो रहा है। इस ट्रस्ट द्वारा विविध शास्त्रोंकी दो लाख बीस हजार प्रतियोंका हिन्दी एवं गुजरातीमें प्रकाशन किया गया है।

ट्रस्ट द्वारा एवं सहयोगी ट्रस्ट श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट द्वारा १-४-१९९९ के बाद करीब ४,५०० व्यक्तियोंको उनकी मांग अनुसार करीब पाँच लाख रुपयेका १८,००० धार्मिक साहित्यका निःशुल्क वितरण किया गया।

अंततः जिनेन्द्र भगवानकी दिव्यध्वनिके साररूप, संसार सागर तैरनेके लिये पावन नौका समान, मुक्तिरमाका प्रतिबिंब जिसमें है, तथा अखंड मोक्षमार्ग जिसमें सदैव देदीप्यमान हो रहा है, ऐसे नित्यबोधक सत्शास्त्र इस ट्रस्टमेंसे प्रकाशित होते रहे, ऐसी भावना...

इति शिवम्

श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्टका संक्षिप्त परिचय

⌘ पूज्य भाईश्री शशीभाईके मार्गदर्शन एवं निर्देशनमें चल रही धर्मप्रभावनाकी प्रवृत्तिओंमें एक और यश कलगी समान कार्य हुआ - वह है `**श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट**' की स्थापना। धर्मप्रभावनाकी प्रवृत्तिओंको वेग देने हेतु इस ट्रस्टकी स्थापना करनेमें आयी। इ.स. १९९७ में स्थापित इस ट्रस्टके अंतर्गत एक आध्यात्मिक पत्रिका हिन्दी-गुजरातीमें प्रकाशित हो, ऐसी अनेक मुमुक्षुओंकी भावना थी। इस भावनाके फलस्वरूप `स्वानुभूतिप्रकाश' नामक एक पत्रिका शुरू करनेमें आयी।

⌘ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीकी १०८ वीं मंगल जन्मजयंतीसे इस पत्रिकाकी सुमंगल शुरूआत हुई। इस पत्रिकाका आध्यात्मिक स्तर रखनेका निश्चित किया गया। इस पत्रिकामें पूज्य गुरुदेवश्रीके आध्यात्मरससभर भाववाही प्रवचन, परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजीकी अंतरंग अध्यात्मदशा एवं उस पर पूज्य भाईश्री शशीभाईका विवेचन, पूज्य बहिनश्री चंपाबहिनकी तत्त्वचर्चा, पूज्य निहालचंद्रजी सोगानीके वचनामृत एवं पत्र और पूज्य भाईश्री शशीभाईके मार्ग रहस्योद्घाटक प्रवचन, लेख तथा वचनामृत प्रकाशित हो रहे हैं। पूज्य भाईश्री शशीभाईके मार्गदर्शनमें शुरू हुई इस पत्रिकाका आज आध्यात्मिक पत्रिकाओंमें अपना एक अनूठा लोकप्रिय स्थान है। यह पत्रिका आज ७००० प्रतियाँ भारतके १५०० शहर एवं गाँवोंमें विशाल संख्यामें निःशुल्क वितरण करनेमें आ रही है। पाठकवर्गकी ओरसे प्राप्त सेंकड़ों पत्रोंसे इस बातकी

प्रतीति होती है कि, इस पत्रिकाके द्वारा उनकी अध्यात्मतृषा संतुष्ट हो रही है।

❋ आधुनिक इन्टरनेटके माध्यम द्वारा यह पत्रिका सारे विश्वमें प्राप्त हो इस हेतुसे www.satshrut.org नामक वेबसाईट द्वारा उपलब्ध कराई जाती है। इस तरह बहुत अल्प समयमें इस ट्रस्टने एवं पत्रिकाने विश्वप्रसिद्धि प्राप्त की।

❋ अविरतरूपसे चल रहे तत्त्वप्रचार व तत्त्वप्रसारके साथ-साथ पूज्य भाईश्रीकी श्रुतभक्तिसे प्रेरित होकर इ.स. १९९८ के मई माहमें विदेश प्रवास निजी खर्चसे सुनिश्चित किया गया। जर्मनी, फ्रांस, स्ट्रेसबर्ग, इंग्लेंड इत्यादिककी सुप्रसिद्ध लायब्रेरियोंकी जैनदर्शनके अध्यात्म ग्रंथोंकी खोज हेतु मुलाकात ली। वहाँसे कुछ एक ग्रंथ भारतमें अप्राप्य होनेकी आशंकासे लाये गये। तत्पश्चात् यह ज्ञात हुआ कि, ये ग्रंथ (पांडुलिपी) भारतमें प्राप्त हैं।

❋ विदेशके इस शोध प्रवास दौरान वहाँकी अत्याधुनिक कम्प्युटर टेकनोलोजीको देखकर एक विशेष विचार स्फुरायमान हुआ कि, जिनवाणीको अगर सी.डी.में सुरक्षित करनेमें आये तो उनकी चिरकालीन सुरक्षा हो सकती है। साथ-साथ इस बातकी भी प्रतीति हुई कि, अपनी यह जैन संस्कृतिकी अमूल्य निधि कहाँ रही है और कितने प्रमाणमें रही है ? उसका कोई व्यवस्थित सूचीकरण नहीं है। अतः सबसे पहले भारतवर्षमें विद्यमान जैन भंडारोंकी पांडुलिपियोंकी सूची बनानी चाहिये, जिससे शोधकवर्ग व विद्वतवर्गको शोध एवं स्वाध्यायमें सरलता रहे।

❋ इ.स. १९९८ के जून माहमें विदेशसे भारत आनेके पश्चात् अनेक विद्वानोंके साथ इस विषय पर चर्चा-विचारणा हेतु पत्र-व्यवहार करनेमें आया। अनेक प्रकारकी चर्चा-विचारणाके बाद इन्दौर स्थित `**श्री कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ**' के साथ संयुक्तरूपसे समस्त प्रकाशित जैनग्रंथोंकी

सूची बनानेका कार्य १, जनवरी-१९९९ को प्रारंभ करनेमें आया।

❋ तत्पश्चात् श्रुतपंचमी, दि. १८-६-१९९९ से ट्रस्टने स्वतंत्ररूपसे कम्प्युटर आदिकी व्यवस्था करके प्राचीन जैन पांडुलिपियोंकी सूचिकरणका कार्य शुरू किया।

❋ प्राचीन जैन पांडुलिपियोंकी सुरक्षा हेतु, बीना स्थित '**श्री अनेकांत ज्ञानमंदिर**' को आर्थिक सहयोग एवं इस पाडुंलिपियोंको कुदरती प्रकोपसे सुरक्षित रखने हेतु अलमिरा आदिके लिये आर्थिक सहयोग दिया गया एवं जगह-जगहसे पांडुलिपियोंको एकत्रिक करने हेतु भी आर्थिक सहयोग दिया तथा ५१,०००/- हजारका '**पूज्य शशीभाई जिनवाणी संरक्षण पुरस्कार**' इस वर्षमें दिया गया।

❋ तेजीसे व सुन्दररूपसे चल रहे जिनमार्गके प्रभावनाके इस कार्योंके दौरान पूज्य भाईश्री शशीभाईने इ.स. १९९९ की, २२ मार्चको चिरविदाई ली। ऐसे असहनीय वियोगके प्रसंग पर एकत्रित मुमुक्षुओंकी उपस्थितिमें २४ मार्च, १९९९ के दिन, पूज्य भाईश्री द्वारा उपदिष्ट देव, गुरु, शास्त्रके प्रति उपकारबुद्धिवशात् एक दस वर्षीय योजनाका आयोजन किया गया। इस योजनामें निम्नलिखित कार्य करनेका निर्णय लिया गया।

१. पूज्य भाईश्रीका स्मारक भवन बनवाना। जिसमें कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन, पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी एवं पूज्य भाईश्री शशीप्रभुकी प्रतिकृतियोंको विराजमान करना। इसके अलावा फोटो प्रदर्शिनी, म्युझियम, पुस्तकालय आदि कार्योंको सम्मिलित करना।

२. पूज्य भाईश्रीकी भावनानुसार दिगम्बर जैन प्राचिन हस्तलिखित एवं ताड़पत्र पर लिखित शास्त्रोंकी सुरक्षा, शोध, अप्रकाशित शास्त्रोंका प्रकाशन, सभी शास्त्रोंकी कम्प्युटर डिस्कमें सुरक्षा करना व इन सी.डी.

योंको अनेक जगह सुरक्षित करना, आदि कार्य स्वयं एवं भारतवर्षकी अन्य संस्थाओंके साथ मिलकर अथवा उन्हें सहयोग देकर करना।

३. पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके टेप प्रवचनोंको अक्षरशः लिखकर, जाँचकर प्रकाशित करना। प्रतिवर्ष एक पुस्तक प्रकाशित करना।

४. `स्वानुभूतिप्रकाश' पत्रिकाका हिन्दी एवं गुजरातीमें नियमित प्रकाशन एवं निःशुल्क वितरण।

५. पूज्य भाईश्रीके अंतर मंथनमेंसे प्रवाहित वचनामृतोंकी डायरीयोंको पुस्तकाकाररूपमें हिन्दी एवं गुजरातीमें प्रकाशित करना।

६. कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजीके खास पत्रों पर पूज्य भाईश्रीके प्रवचनोंको प्रकाशित करना।

७. पूज्य भाईश्री अभिनंदन ग्रंथ हिन्दी एवं गुजरातीमें प्रकाशित करना।

८. पूज्य भाईश्रीके ५५०० ऑडियो प्रवचनोंको एवं ५० विडीयो केसेटको सी.डी. में परिवर्तित करना।

९. पूज्य भाईश्रीके अंतिम संस्कारके स्थान पर समाधि मंदिर बनवाना।

❀ उक्त योजनानुसार पूज्य भाईश्रीकी सभी ऑडियो कैसेट एवं विडीयो कैसेटको सी.डी. में परिवर्तित करनेका कार्य दो वर्षमें पूर्ण किया गया।

❀ कार्तिक सुदी-११, दि. १९-११-१९९९ के दिन `**श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर**' की शिलान्यास विधि आनंदोल्लासपूर्वक संपन्न हुई।

❀ पूज्य भाईश्रीकी ६७ वीं जन्मजयंतीके प्रसंग पर पूज्य भाईश्री द्वारा हस्तलिखित ९ डायरियोंको `**अनुभव संजीवनी**' नामसे गुजरातीमें प्रकाशित किया गया।

⌘ पूज्य भाईश्रीकी ६८ वीं मंगल जन्मजयंतीके पंच दिवसीय महोत्सवमें दि. ३०-११-२००० के दिन `**श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर**' का उद्‌घाटन हुआ। तद्‌उपरांत पूज्य भाईश्रीके निवासस्थानवाली सड़क तथा उनके निवासस्थानके निकट चौकको अनुक्रमसे `**पूज्य शशीप्रभु मार्ग**' व `**पूज्य शशीप्रभु चौक**' का नामकरण व उद्‌घाटन पूज्य भाईश्री ६८ वीं जन्मजयंती दि. ४-१२-२००० के दिन किया गया। तथा `**अनुभव संजीवनी**' का हिन्दी संस्करण प्रकाशित किया गया।

⌘ प्रकाशित साहित्यकी सूचीका कार्य ८०% पूरा हो जानेके कारण ३१-३-२००१ से बंध कर दिया गया। करीब २७,००० शास्त्रों / पुस्तकोंकी सूचीको कम्प्युटरमें फीड़ किया गया।

⌘ २०,००० पांडुलिपियोंको प्रकाशित सूचीमेंसे सेन्ट्रल सूचीके लिये कम्प्युटरमें फीड़ किया गया। अलग अलग शास्त्र भंडारोंकी १५,००० पांडुलिपियोंकी सूचीयाँ बनाकर कम्प्युटरमें फीड़ किया गया और उसकी एक-एक प्रति संबंधित शास्त्र भंडारोंको दी गई।

⌘ वर्तमानमें यह कार्य जयपुर ब्रान्च ऑफिस, ड़ी-५०, ज्योतिमार्ग, बापुनगरमें स्वतंत्ररूपसे चल रहा है। जहाँ छः विद्वान और दो कम्प्युटर ओपरेटर इस काम पर लगे हैं। इसके अलावा भारतमें अलग-अलग जगह पाँच विद्वान काम कर रहे हैं।

⌘ करीब ७०-८० पांडुलिपियोंको स्केन करके सी.डी. बनाई गई।

⌘ भारत सरकार द्वारा संचालित भगवान महावीर २६०० निर्वाण कल्याणक महोत्सव कार्यक्रमके अंतर्गत, जैन पांडुलिपियोंका सूचीकरण एवं संरक्षणकी परियोजना पर एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रोजेक्ट रिपोर्ट बनवाकर उस कार्यक्रमके अंतर्गत कमीटीको पेश किया है, जो अभी

भारत सरकरके विचाराधीन है।

❋ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीकी ११२ वीं जन्मजयंतीके अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा ४७ शक्तियों पर हुए खास प्रवचनोंको `**प्रवचन नवनीत**' भाग-४ में प्रकाशित करनेमें आये।

❖ वर्तमान गतिविधियाँ :

❋ पूज्य भाईश्री शशीभाईकी ६९ वीं जन्मजयंतीके पावन अवसर पर आयोजित पंच दिवसीय महोत्सव (दि. १९-१२-२००१ से २३-१२-२००१ तक) पर संगमरमरमें उत्कीर्ण पंच परमेष्ठीके चित्रपटकी अनावरण विधि एवं परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन, पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी एवं पूज्य भाईश्री शशीभाईके संगमरमरमें उत्कीर्ण स्टेच्यु (प्रतिकृति) विराजमान करनेका सुनिश्चित किया गया है।

❋ इस प्रसंग पर श्रीमद् राजचंद्रजीके पत्रों पर पूज्य भाईश्रीके प्रवचनोंकी दो पुस्तकें `**कुटुम्ब प्रतिबंध**' (हिन्दी एवं गुजरातीमें), तथा `**सिद्धपदका सर्वश्रेष्ठ उपाय**' (हिन्दी एवं गुजरातीमें) प्रकाशित की जायेगी।

❖ अन्य गतिविधियाँ :-

❋ पूज्य बहिनश्री चंपाबहिनकी तत्त्वचर्चाकी ऑडियो एवं विडीयो कैसेटको सी.डी. में परिवर्तित किया गया।

❋ पूज्य गुरुदेवश्रीके राजकोटमें हुए विभिन्न शास्त्रों परके प्रवचन जो कि, स्पूलमें संरक्षित थे, उसे सी.डी. में परिवर्तित किया गया।

❋ प्रकाशित पंच परमागम (समयसारजी, नियमसारजी, प्रवचनसारजी, पंचास्तिकाय एवं अष्टपाहुड) को संरक्षण हेतु सी.डी. में सुरक्षित किया गया।

❖ भावि योजनायें :-

१. वेबसाइट पर पांडुलिपीयोंको देने की योजना।

२. १०० वर्ष पहले छपे हुये शास्त्रोंका स्केनींग कर सी.डी. द्वारा सुरक्षा।

३. शुरूके बीस वर्षके आत्मधर्मकी फाईलोंका स्केनींग कर सी.डी. द्वारा सुरक्षा।

४. प्रवचनसार शास्त्र पर पूज्य गुरुदेवश्रीके २७५ प्रवचनोंका अक्षरशः पुस्तकाकार रूपमें प्रतिवर्ष एक पुस्तक प्रकाशनकी भावना।

५. पूज्य भाईश्रीके द्वारा किये गये प्रवचनोंमें से प्रयोजनभूत विषयोंको अलग-अलग छाँटकर प्रति वर्ष चार से छः पुस्तक हिन्दी एवं गुजरातीमें प्रकाशित करना।

६. प्रवचन नवनीतका हिन्दी अनुवादका प्रकाशन।

७. पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचनोंकी छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित करना।

श्रीमद् भगवत् कुंदकुंदाचार्यदेवका जीवन परिचय

अनादि निधन जैन दर्शनकी परंपरामें अनंत तीर्थंकर, आचार्य भगवंत एवं ज्ञानी पुरुष होते आये हैं। अनादि कालसे परिभ्रमण करते हुए जीवको संसारके समस्त दुःखसे मुक्त कराकर शाश्वत्

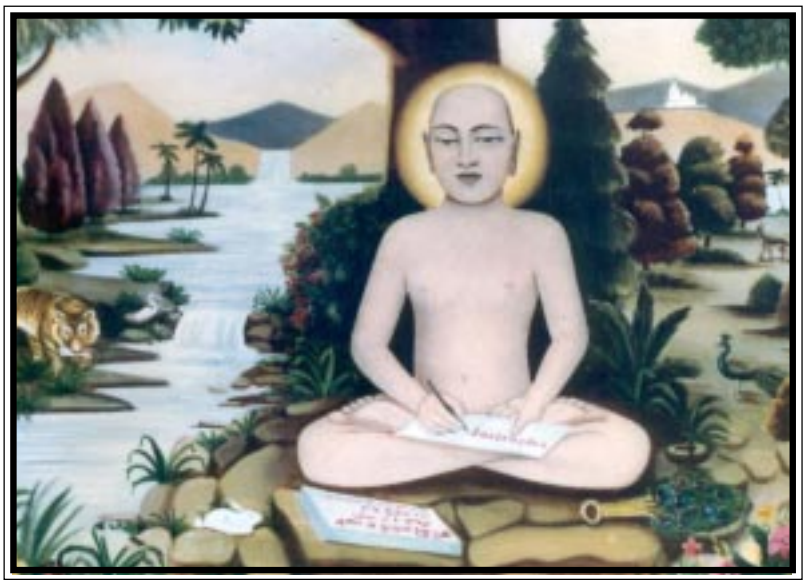

सुखका पंथ दर्शाते आये हैं। वर्तमानके शासन नायक तीर्थाधिनाथ भगवान महावीर स्वामीके इस जिन - शासनमें आजसे करीब दो हजार वर्ष पूर्व समर्थ आचार्य कुंदकुंददेव हुए।

❖ मंगल मूर्ति

भगवान कुंदकुंदाचार्य विक्रम संवतके प्रारम्भमें हुए। दिगम्बर जैन परम्परामें भगवान कुंदकुंदाचार्यका स्थान सर्वोत्कृष्ट है। ``**मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो जैनधमोऽस्तु मंगलम्।।**'' यह श्लोक प्रत्येक दिगम्बर जैन, शास्त्रस्वाध्यायके प्रारम्भमें मंगलाचरणके रूपमें बोलता है। इससे सिद्ध होता है कि सर्वज्ञ भगवान श्री महावीर स्वामी और श्री गौतमगणधरके पश्चात् तत्काल ही भगवान कुंदकुंदाचार्यका स्थान है। दिगम्बर जैन साधु अपनेको कुंदकुंदाचार्यकी परंपराका कहलानेमें गौरव मानते हैं। भगवान कुंदकुंदाचार्यके शास्त्र साक्षात् गणधरदेवके वचन जितने ही प्रमाणभूत माने जाते हैं। उनके वाद होनेवाले ग्रंथकार आचार्य अपने किसी कथनको सिद्ध करनेके लिए कुंदकुंदाचार्यके शास्त्रोंका प्रमाण देते हैं, इसलिये वह कथन निर्विवाद सिद्ध हो जाता है। उनके वादके लिखे गये ग्रंथोंमें उनके शास्त्रोंमेंसे बहुतसे अवतरण लिये गये हैं। वास्तवमें भगवान कुंदकुंदाचार्यने अपने परमागममें तीर्थंकर देवोंके द्वारा प्ररूपित उत्तमोत्तम सिद्धान्तोंको सुरक्षित कर रखा है, और मोक्षमार्गको स्थिर रखा है।

विक्रम संवत ९१०में हुए श्री देवसेनाचार्यने अपने दर्शनसार नामक ग्रंथमें कहा है कि - ``विदेह क्षेत्रके वर्तमान तीर्थंकर सीमंधर स्वामीके समवसरणमें जाकर श्री पद्मनन्दिनाथ (कुंदकुंदाचार्य) ने स्वयं प्राप्त किये गये ज्ञानके द्वारा बोध न दिया होता तो मुनिजन सच्चे मार्गको कैसे जानते ?'' एक दूसरा उल्लेख है, जिसमें कुंदकुंदाचार्यको `कलिकालसर्वज्ञ' कहा गया है। श्री श्रुतसागरसूरिकृत षट्प्राभृत टीकाके अंतमें लिखा है कि - पद्मनन्दि, कुंदकुंदाचार्य, वक्रग्रीवाचार्य, एलाचार्य और गृध्रपिच्छाचार्य, - इन पांच नामोंसे युक्त तथा जिन्हें चार अंगुल उपर आकाशमें चलनेकी ऋद्धि प्राप्त थी और जिन्होंने

पूर्व विदेहमें जाकर सीमंधर भगवानकी वंदना की थी तथा उनके पाससे प्राप्त श्रुतज्ञानके द्वारा भारतवर्षके भव्यजीवोंको प्रतिबोधित किया था, उन श्री जिनचंद्रसूरि भट्टारकके पट्टके आभरणरूप कलिकालसर्वज्ञ (भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव) के द्वारा रचित इस षट्प्राभृत ग्रंथमें... सूरीश्वर श्री श्रुतसागरके द्वारा रची गई मोक्षप्राभृतकी टीका समाप्त हुई।''

भगवान कुंदकुंदाचार्यकी महत्ताको प्रदर्शित करनेवाले ऐसे अनेकानेक उल्लेख जैन साहित्यमें मिलते हैं। कई शिलालेखोंमें भी उल्लेख पाय जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सनातन जैन संप्रदायमें कलिकालसर्वज्ञ भगवान कुंदकुंदाचार्यका अद्वितीय स्थान है। (**प्रवचनसार उपोद्घातमें से साभार**)

❖ वर्तमान जीवन

गर्भकाल पूर्ण कर ईसापूर्व १०८ के शार्वरी संवत्सरके माघ मासके शुक्ल पक्षकी पंचमी तिथिके दिन एक तेजस्वी बालकका जन्म हुआ। गुणकीर्ति एवं शांतलाका लाड़ला वही बालक बड़ा होकर युगप्रधान आचार्य कुंदकुंद बना। चूँकि गर्भधारणके पूर्व माँ शांतलाने स्वप्नमें चंद्रमाकी चाँदनी देखी थी, अतएव बालकका नाम `पद्मप्रभ' रखा गया। बाल्यकालसे ही इनकी माँ पालनेमें झुलाते समय ``शुद्धोऽसी बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि संसार माया-परिवर्जितोऽसि।'' ऐसी लोरियाँ सुनाती थी, जिसके फलस्वरूप आत्मरुचि एवं वैराग्यके संस्कार बचपनमें ही प्रबल हो गये थे। ऐसे मांगलिक वातावरणमें दूजके चाँदकी भाँति क्रमशः वृद्धिगत होते हुए बालक पद्मप्रभने ग्यारहवें वर्षमें प्रवेश किया। तभी अष्टांग-महानिमित्तके ज्ञाता आचार्य अनंतवीर्य कौण्डकुंदी ग्राममें पधारे एवं उस बालकको देखकर बोले कि - `यह बालक महान् तपस्वी एवं परम प्रतापी संत होगा तथा जब तक जैन परंपरा रहेगी, इस कालमें इसका नाम अमर रहेगा।'

मुनिराजकी यह वाणी सफल हुई तथा उस अल्प आयुमें ही वह बालक घर-बारको त्यागकर नग्न दिगम्बर श्रमणके रूपमें दीक्षित हो गया। दीक्षाके बाद उनका नाम पद्मनंदी प्रसिद्ध हुआ। तथा नंदि-संघकी पट्टावलिके अनुसार आत्मवेत्ता आचार्य जिनचंद्र इनके दीक्षागुरु प्रतीत होते हैं।

❖ आचार्यपद

`मुनि' पद पर लगभग ३३ वर्ष तक निरंतर ज्ञानाराधना एवं वैराग्यरससे ओतप्रोत तप साधनापूर्वक दिगम्बर जैनश्रमणकी कठिन चर्याका निर्दोष पालन करते हुए ईसापूर्व ६४ में मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी, गुरुवारके दिन चतुर्विध संघने उन्हें ४४ वर्षकी आयुमें आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। इस पद रहते हुए चतुर्विध-संघके नायक होकर ग्रंथ-निर्माण एवं अन्य अनेकों पुनीत कार्योंके द्वारा समाजको नई दिशा प्रदान करते हुए १५ वर्ष, १० माह एवं १५ दिनकी दीर्घायु व्यतीत कर ईसापूर्व १२ आपने समाधिपूर्वक स्वर्गारोहण किया।

❖ धर्मप्रभावना

जहाँ आचार्य कुंदकुंदने अपार साहित्य - सृजन कर व्यापक लोकहित किया था, वहीं उन्होंने वृहत्तर भारतके विशाल भूभागमें पैदल विहार कर व्यापक धर्मप्रभावनाकी थी। विद्वानोंके अनुसार उन्होंने दक्षिण भारतके तामिलनाडु प्रांतसे लेकर कर्नाटक, आंध्र, महाराष्ट्र, मध्यप्रेदश, राजस्थान, गुजरात आदि प्रांतोमें उस विषमकालमें पदयात्राकी तथा गिरनार पर्वत पर जाकर नेमिनाथ तीर्थंकरकी पावन निर्वाणभूमिके दर्शन किये थे।

पोन्नूर तीर्थकी यात्राके प्रसंगमें (सन् १९५८ में) आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी हजारों धर्मानुरागी भाई-बहनोंके साथ यहाँ पधारे थे तथा यहाँ स्थापित परमपूज्य आचार्यश्री कुंदकुंदके पावन चरणोंकी वंदना कर भावविभोर हो उठे थे। तब उन्होंने आचार्य

कुंदकुंददेवके प्रति भक्तिसे ओतप्रोत होकर कहा था कि - `**आचार्य कुंदकुंददेवने इस कलिकालमें जगद्गुरु तीर्थंकर जैसा महान कार्य किया है। तथा आचार्य अमृतचंद्रसूरिने उनके ग्रंथोंका भाष्य करके उनके हृदयको खोलकर रख दिया है। उनके गंभीर अभिप्रायको स्पष्ट करनेमें वे साक्षात् गणधरदेवके समान प्रतीत होते हैं। आचार्य कुंदकुंद द्वारा रचित परमागम `समयसार' शास्त्र तो `आगमोंका भी आगम' है। लाखों शास्त्रोंका निचोड़ इसमें निहित है। यह जैनशासनका स्तंभ है तथा साधक जीवोंके लिए यह कामधेनु व कल्पवृक्षके समान है। इसकी प्रत्येक गाथासे आत्मानुभवका रस पकता है**''

सभी ज्ञानियोंके प्रवचनमें भगवान कुंदकुंदआचार्यका बहुमानपूर्वकका स्मरण आज भी श्रवण करनेको मिलता है।

परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचन्द्रजीका आध्यात्मिक जीवन परिचय एवं गुण संकीर्तन

श्रीमद् राजचंद्रजीका जन्म संवत् १९२४ कार्तिक सुदी पूर्णिमाके मंगल दिन रविवारको रातके दो बजे सौराष्ट्रके ववाणिया नामक एक छोटे गाँवमें हुआ था। उनके पिताश्रीका नाम श्री रवजीभाई पंचाणभाई महेता और माताश्रीका नाम श्री देवबाई था। उनके माता-पिता बहुत भक्तिवान और सेवाभावी थे। ऐसे भक्तिमय और सेवापरायण माता-पिताके यहाँ श्रीमद्जीका जन्म हुआ था। उनको बचपनमें `लक्ष्मीनंदन' के नामसे पुकारते थे। बादमें यह नाम बदलकर `रायचंद' रखने में आया। आगे जाकर वे `श्रीमद् राजचंद्र' के नाम से प्रसिद्ध हुए। बचपन से ही वे प्रतिभाशाली, महाबुद्धिशाली, व्यवहार-कुशल, सहस्त्रावधान शक्तिके धारक, धार्मिक

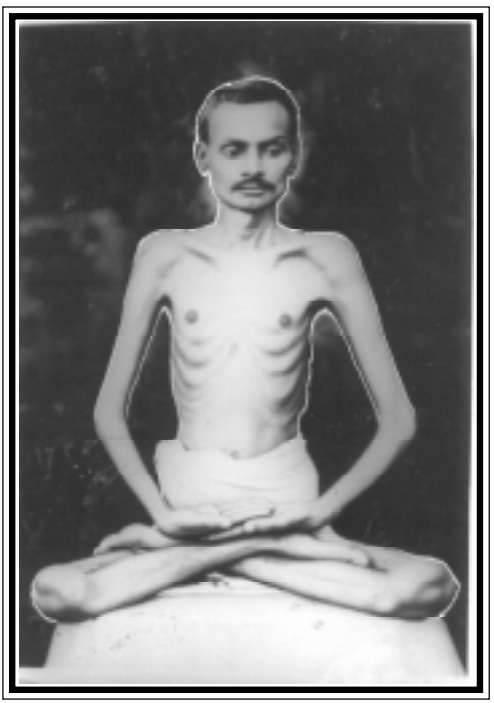

संस्कारों के धारक, जातिस्मरण तथा अनेक ज्ञान के धनी, वैरागी एवं सत् के खोजी थे।

श्रीमद् राजचंद्र विरल स्वरूपनिष्ठ तत्त्ववेत्ताओंमेंसे एक थे। श्रीमद् राजचंद्र यानी अध्यात्मगगनमें झिलमिलाती हुई अदभुत् ज्ञानज्योति, मात्र भारतकी ही नहीं, अपितु विश्वकी एक विरल विभूति, अमूल्य आत्मज्ञानरूप दिव्यज्योतिके जाज्वल्यमान प्रकाशसे, पूर्वमहापुरूषों द्वारा प्रकाशित सनातन मोक्षमार्गका उद्योतकर भारतकी पुनीत पृथ्वीको विभूषित कर इस अवनीतलको पावन करनेवाले परम ज्ञानावतार, ज्ञाननिधान, ज्ञानभास्कर, ज्ञानमूर्ति !

शास्त्रके ज्ञाता तथा उपदेशक तो हमें अनेक मिल जायेंगे परन्तु जिनका जीवन ही सत्शास्त्रका प्रतीक हो ऐसी विभूति प्राप्त होना दुर्लभ है। श्रीमद् राजचन्द्रके पास तो जाज्वल्यमान आत्मज्ञानमय उज्जवल जीवनका अंतरंग प्रकाश था और इसीलिये इन्हें अद्भुत अमृतवाणीकी सहज स्फुरणा थी।

महात्मा गाँधीजी लिखते हैं :-

``मेरे जीवनको श्रीमद् राजचन्द्रने मुख्यतया प्रभावित किया है। महात्मा टोल्स्टोय तथा रस्किनकी अपेक्षा भी श्रीमद्ने मेरे जीवन पर गहरा असर किया है । बहुत बार कह और लिख गया हूँ कि मैंने बहुतोंके जीवनमेंसे बहुत कुछ लिया है; परन्तु सबसे अधिक किसीके जीवनसे मैंने ग्रहण किया हो तो वह कवि (श्रीमद् राजचन्द्र) के जीवनसे है । .....

कृपालुदेवके २४ वीं सालके पत्रसे कि जिसमें स्वयंकी ज्ञानदशाकी प्राप्तिका उल्लेख स्वयंने किया है, वहाँसे लेकर जो-जो वचन स्वयंकी आभ्यंतरदशाके द्योतक हैं, उन-उन वचनोंमें रहा अर्थगांभीर्य-पारमार्थिक रहस्य एवम् द्रव्यानुयोग और आध्यात्मके सिद्धांतोंको यथाशक्ति स्पष्ट करनेका प्रयास हुआ है।

तथापि, यह उल्लेख करना अस्थानमें नहीं गिना जायेगा कि इसके पहले (२४ वर्ष पूर्व) के उनके वचन, जो आत्मज्ञान (स्वानुभव) के कारणभूत ऐसी जो मुमुक्षुकी सुविचारणाकी भूमिकामें मुखरित हुए हैं, उसका भी सत्कार करने योग्य है, आदर करने योग्य है और भक्ति करने योग्य है। यहाँ उल्लेखनीय है कि परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीने अपने खास पसंदगीके प्रवचनोंमें कृपालुदेवके १७ साल पहले लिखे गये 'बोधवचन' क्रमांक - १०८ से ११७ तकके दस वचनामृतोंको स्थान दिया है। इन वचनामृतोंके प्रति पूज्य गुरुदेवश्रीके उद्‌गार अनुप्रेक्षणीय हैं :

``**- यह १२ अंगका सार है।**''

इतना ही नहीं सुविचारणाका महत्त्व मोक्षमार्गकी प्राप्तिमें कितना है उस विषयमें निम्न उद्धृत आत्मसिद्धिशास्त्रकी गाथा - ४१ गवेषणीय है, अवगाहन करने योग्य है। :-

``**ज्यां प्रगटे सुविचारणा, त्यां प्रगटे निज ज्ञान;**
जे ज्ञाने क्षय मोह थई, पामे पद निर्वाण।''

छोटी उम्रमें जातिस्मरण ज्ञानकी उत्पत्ति व असाधारण स्मरणशक्ति - ये उनके असाधारण व्यक्तित्वके अनेक पहलूमेंसे दो पहलू हैं; जिसके कारण बाह्य जगतमें उनकी प्रसिद्धि हुई, तथा पात्र मुमुक्षुओंको उनकी समीपता व सान्निध्य मिलनेका निमित्त कारण बना।

उल्लेखनीय है कि, उनकी विशेषताओंको तीन विभागमें देखा जा सकता है।

यथा :-

१. उनकी अभ्यंतर अध्यात्मदशाकी विशेषताएँ,

२. उस अध्यात्मदशाके साथ ही साथ प्रवर्तित उच्च / आदर्श व्यवहारिक परिणामोंकी, विशेषताएँ, और

३. तीर्थंकरदेवके मूलमार्गको प्रकाशित करनेकी शक्तिरूप विशेषताएँ ।

इन तीनों प्रकारकी विशेषताओंका उल्लेख, उनके ही वर्तन व वचनामृतोंसे करने योग्य है; और इस तरह उसे प्रतीत करने योग्य है, भक्ति करने योग्य है ।

ꕥ परम नि:स्पृहता :- परिपूर्ण आत्मस्वरूपके अवलबंनपूर्वक सर्व बाह्य पदार्थोंके प्रति अपेक्षाबुद्धि विलय होती है; जगतके किसी भी पदार्थकी स्पृहा नहीं रहती । इतना ही नहीं स्वस्वरूपदृष्टिकी मस्तीमें तो भावी मोक्ष-पर्यायकी भी अपेक्षा नहीं रहती है । ऐसे आशयको प्रकाशित करता हुआ उनका वचनामृत पत्रांक १६५में है कि ``**इस ज्ञानकी दिन प्रतिदिन इस आत्माको भी विशेषता होती जाती है । मैं मानता हूँ कि केवलज्ञान तकका परिश्रम व्यर्थ तो नहीं जायेगा । हमें मोक्षकी कोई जरूरत नहीं है।**''

ꕥ अद्‌भुत विदेहीदशा :- ज्ञानदशाके प्रारंभसे ही उन्हें परिणतिमें स्वरूपमें समा जानेकी लय लगी थी । और उन्होंने बाह्य धर्म-प्रभावनाके परिणामोंको गौण करके निश्चयधर्मकी प्रधानता की है, यह स्पष्ट दिखनेमें आता है । इसके संदर्भमें उल्लेख पत्रांक १७६में प्राप्त है : ``**एक ओर तो परमार्थमार्गको शीघ्रतासे प्रगट करनेकी इच्छा है, और एक ओर अलख `लय' में समा जानेकी इच्छा रहती है.... । अद्‌भुतदशा निरन्तर रहा करती है । अवधूत हुए हैं,....**'' इसके अलावा उन्होंने पत्रांक-२५५में स्वयंकी अंतरंगदशा इन शब्दोंमें प्रकाशित की है : ``**एक पुराणपुरुष और पुराणपुरुषकी प्रेमसंपत्तिके बिना हमें कुछ भी अच्छा नहीं लगता; हमें किसी पदार्थमें रुचि मात्र नहीं रही है; कुछ प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं होती; व्यवहार कैसे चलता है इसका भान नहीं हैं; जगत**

किस स्थितिमें है इसकी स्मृति नहीं रहती; शत्रु-मित्रमें कोई भेदभाव नहीं रहा, हम देहधारी हैं या नहीं इसे जब याद करते हैं तब मुश्किलसे जान पाते हैं, ...संपत्ति पूर्ण है इसलिए संपत्तिकी इच्छा नहीं है; ...हृदय प्राय: शून्य जैसा हो गया है: पाँचों इन्द्रियाँ शून्यरूपसे प्रवृत्त होती रहती हैं । नय, प्रमाण इत्यादि शास्त्रभेद याद नहीं आते; कुछ पढ़ते हुए चित्त स्थिर नहीं रहता; खानेकी, पीनेकी, बैठनेकी, सोनेकी, चलनेकी और बोलनेकी वृत्तियाँ अपनी इच्छा अनुसार प्रवृत्ति करती रहती हैं।" इत्यादि वचन, उनकी अद्‌भुत विदेहीदशाको प्रकाशित करते हैं । पुन: उनके चित्तकी आत्माकार स्थितिका उल्लेख पत्रांक-३९८में देखनेको मिलता है : ``**आत्माकार स्थिति हो जानेसे चित्त प्राय: एक अंश भी उपाधियोगका वेदन करने योग्य नहीं है ।**"

❋ अपूर्व वीतरागता :- मोक्षमार्गके प्रारंभमें उनकी साधनामें जो अपूर्व वीतरागता प्रगट हुई थी उसका उल्लेख पत्रांक-३१३ में इस प्रकारसे किया है : ``**कोई इस प्रकारका उदय है कि अपूर्व वीतरागताके होनेपर भी हम व्यापार सम्बन्धी कुछ प्रवृत्ति कर सकते हैं, तथा खाने-पीने आदिकी अन्य प्रवृत्तियाँ भी बड़ी मुश्किलसे कर पाते हैं । मन कहीं भी विराम नहीं पाता....चित्तका भी अधिक संग नहीं है, और आत्मा आत्मभावमें रहता है। समय-समयपर अनंतगुणविशिष्ट आत्मभाव बढ़ता हो ऐसी दशा रहती है।**" इसके अलावा उनके वचनामृत पत्रांक ३१७ में इस प्रकार लिखा है : ``**चित्त प्राय: वनमें रहता है, आत्मा तो प्राय: मुक्तस्वरूप लगता है। वीतरागता विशेष है । ....जगतसे बहुत उदास हो गये हैं । बस्तीसे तंग आ गये हैं**"....इत्यादि ।

❋ अलौकिक स्वरूप जागृति :- गृहस्थदशा व अनेक प्रकारके व्यावसायिक प्रसंगोंके बीच भी उनकी अलौकिक स्वरूप जागृति

स्पष्टरूपसे उभरकर आती है । उस जागृतिके वश स्वयंके सूक्ष्म परिणामोंका अवलोकन करते हुए, उस विषयको उन्होंने अनेक पत्रोंमें असाधारणरूपमें व्यक्त किया है । ऐसी जागृतिका उल्लेख, आराधक पुरुषोंके पुरूषार्थको स्मरणमें लेते हुए पत्रांक-७८८ में इस प्रकारसे करते हैं : ``**असारभूत व्यवहारको सारभूत प्रयोजनकी भाँति करनेका उदय रहनेपर भी जो पुरुष उस उदयसे क्षोभ न पाकर सहजभाव स्वधर्ममें निश्चलतासे रहे हैं, उन पुरुषोंके भीष्मव्रतका वारंवार स्मरण करते हैं ।**''

❋ अदम्य पुरुषार्थ :- कृपालुदेवके जीवनकी परिणमनकी यह ऐसी कोई असाधारण विलक्षणता थी जो कि उनके प्रबल पुरुषार्थको प्रकाशित करती है । उन्होंने करीब १० सालके साधक जीवनमें ही अदम्य पुरुषार्थसे संसारको केवल एक भव तक सीमित करके निर्वाणपदकी समीपताको संप्राप्त किया है । जिसका उल्लेख उन्होंने अपने आभ्यंतर परिणाम अवलोकन संस्मरणपोथी १/३८ में इन शब्दोंमें किया है : ``**वैश्यवेषसे और निर्ग्रंथभावसे रहते हुए कोटि-कोटि विचार हुआ करते हैं । ...निर्ग्रंथभावमें रहता हुआ चित्त उस व्यवहारमें यथार्थ प्रवृत्ति न कर सके यह भी सत्य है; जिसके लिये इन दो प्रकारकी एक स्थितिसे प्रवृत्ति नहीं की जा सकती, क्योंकि प्रथम प्रकाररसे प्रवृत्ति करते हुए निर्ग्रंथभावसे उदास रहना पड़े तो ही यथार्थ व्यवहारकी रक्षा हो सकती है, ...उस व्यवहारका त्याग किये बिना अथवा अत्यंत अल्प किये बिना निर्ग्रंथता यथार्थ नहीं रहती, और उदयरूप होनेसे व्यवहारका त्याग नहीं किया जाता । ये सर्व विभाव-योग दूर हुए बिना हमारा चित्त दूसरे किसी उपायसे संतोष प्राप्त करे, ऐसा नहीं लगता । उस विभावरूपसे रहनेवाले आत्मभावको बहुत परिक्षीण किया है, और अभी भी वही परिणति**

रहती है । उस संपूर्ण विभावयोगको निवृत्त किये बिना चित्त विश्रांतिको प्राप्त हो ऐसा नहीं लगता ।""

उनका पुरुषार्थ तो वर्तमान भवमें ही पूर्ण दशा प्राप्त करनेका था। और उसके लिये पुरुषार्थ भी उन्होंने तीव्र रूपसे उठाया था जिसका उल्लेख उनके अंतिम वचनामृत पत्रांक-९५१ में देखनेको मिलता है : ``**अति त्वरासे प्रवास पूरा करना था । वहाँ बीचमें सहराका रेगिस्तान सम्प्राप्त हुआ । सिरपर बहुत बोझ** (**पूर्वकर्मका**) **रहा था उसे आत्मवीर्यसे जिस तरह अल्पकालमें वेदन कर लिया जाये उस तरह योजना करते हुए पैरोंने निकाचित उदयमान थकान ग्रहण की । जो** (**वस्तु**) **स्वरूप है वह अन्यथा नहीं होता।**''यह और ऐसे अनेक तीव्र पुरुषार्थ द्योतक भावोंका दर्शन उनके वचनामृतोंमें होता है । और उनके कड़े पुरुषाार्थको देखते हुए मस्तक सहज ही झुक जाता है ।

❋ सम्यक् औदासीन्यवृत्ति :- ज्ञानदशाके साथ अविनाभावीरूपसे उत्पन्न होनेवाला वैराग्य उनकी आराधक दशाके पहले भी व बादमें भी प्रबल था । जिसका दर्शन उनके अनेक पत्रोंमें होता है । वे पत्रांक-४१४ में लिखते हैं कि :- ``**गृहस्थ प्रत्ययी प्रारब्ध जब तक उदयमें रहे तब तक `सर्वथा' अयाचकताका सेवन करनेवाला चित्त रहनेमें ज्ञानीपुरूषोंका मार्ग निहित है, इस कारण इस उपाधियोगका सेवन करते हैं । यदि उस मार्गकी उपेक्षा करें तो भी ज्ञानीका अपराध नहीं करते, ऐसा है, फिर भी उपेक्षा नहीं हो सकती । यदि उपेक्षा करें तो गृहस्थाश्रमका सेवन भी वनवासीरूपसे हो, ऐसा तीव्र वैराग्य रहता है । सर्व प्रकारके कर्तव्यके प्रति उदासीन ऐसे हमसे कुछ हो सकता है तो एक यही हो सकता है कि पूर्वोपार्जितका समताभावसे वेदन करना; और जो कुछ किया**

जाता है वह उसके आधारसे किया जाता है, ऐसी स्थिति है।" और पत्रांक-५०८ में उनके द्वारा व्यक्त उद्‌गारको मुमुक्षुजीवको हृदयंगम करने योग्य है : ``**यह संसार किसी प्रकारसे रुचियोग्य प्रतीत नहीं होता; प्रत्यक्ष रसरहित स्वरूप ही दिखायी देता है; ... वारंवार संसार भयरूप लगता है । भयरूप लगनेका दूसरा कोई कारण प्रतीत नहीं होता, मात्र इसमें शुद्ध-आत्मस्वरूपको अप्रधान रखकर प्रवृत्ति होती है, जिससे बड़ी परेशानी रहती है, और नित्य छूटनेका लक्ष्य रहता है । तथा तद्‌नुसारी दूसरे अनेक विकल्पोंसे कटु लगनेवाले इस संसारमें बरबस स्थिति है ।**'' पुन: उनके वचनामृत पत्रांक-२१४ में द्रष्टव्य है : ``**हमें तो ऐसा लगता है कि इस जगतके प्रति हमारा परम उदासीन भाव रहता है; वह बिलकुल सोनेका हो तो भी हमारे लिये तृणवत् है ।**'' कृपालुदेवकी अंतर भावनाका दर्शन पत्रांक २१७ में होता है- वे लिखते हैं कि : ``**वनवासकी वारंवार इच्छा हुआ करती है । यद्यपि वैराग्य तो ऐसा रहता है कि प्राय: आत्माको घर और वनमें कोई भेद नहीं लगता,... वारंवार यही रटन रहनेसे `वनमें जाये" `वनमें जाये" ऐसा मनमें हो आता है।**''

❋ अदीन वृत्ति :- ज्ञानदशामें निज परमेश्वरपदका अवलंबन रहने से ज्ञानीपुरुषको कहीं भी किसी प्रसंगमें दीनता सहजरूपसे ही नहीं होती है । तद्‌उपरांत उदयके प्रति उपेक्षा व असावधानी रहने पर भी भविष्यकी कोई चिंता नहीं होती है । ऐसी ज्ञानदशाकी विलक्षणता है । क्योंकि सभी अज्ञानी जीवोंको भविष्यकी चिंताके आगे वर्तमानमें आत्महितका पुरुषार्थ हो ही नहीं पाता । इस संदर्भमें उनके वचनामृत पत्रांक २१७ में इस प्रकारसे है, जिसका मुमुक्षुजीव को अवधारन करना योग्य है : ``**उदयकर्म भोगते हुए दीनता**

अनुकूल नहीं है । भविष्यके एक क्षणका भी प्राय: विचार भी नहीं रहता ।''

ꕥ समदर्शिता :- उनके विचारोंमें शुरूसे ही सभी आत्माओंके प्रति समदृष्टि रखनेका अभिप्राय था । जिसका दर्शन १७ वें वर्षमें रचित `अमूल्य तत्त्वविचार' काव्यमें होता है । `**सर्वात्ममां समदृष्टि द्यो; आ वचनने हृदये लखो**' इसके अलावा पत्रांक ४६९ में वे लिखते हैं कि ``**जैसी दृष्टि इस आत्माके प्रति है, वैसी दृष्टि जगतके सर्व आत्माओंके प्रति है ।... जैसी इस आत्माकी सहजानंद स्थिति चाहते हैं, वैसी ही सर्व आत्माओंकी चाहते हैं। जो-जो इस आत्माके लिये चाहते हैं, वह सब सर्व आत्माओंके लिये चाहते हैं। जैसा इस देहके प्रति भाव रखते हैं, वैसा ही सर्व देहोंके प्रति भाव रखते हैं**'' इत्यादि प्रकारसे इस पत्रमें उनके समदर्शित्वके गुण को प्रगट करते हुए अनेक पहलू प्रकाशित हुए हैं । जो कि जैनदर्शनकी विशालताको प्रदर्शित करते हैं ।

ꕥ प्रशम दशा :- उनकी प्रशम मुद्राके प्रत्यक्ष दर्शन जिन मुमुक्षुओंने किये होगे, उन्हें वास्तवमें भाग्यशाली गिनना चाहिये । किंतु उनकी छविमें (जो कि महान् सद्भाग्यसे उपलब्ध है उसमें) आज भी उनकी प्रशमता अभिव्यक्त होती है। इस प्रकारकी प्रशमता ज्ञानीपुरुषकी बाह्याभ्यंतरदशाका एक प्रगट लक्षण है। और वह प्रयोगात्मक रूपसे ज्ञानदशाका बोध करानेवाला है । कृपालुदेवकी प्रशमदशा तो वास्तवमें अभिवंदनीय है ।

ꕥ जितेन्द्रियता :- वर्तमानकालके आयुष्यकी स्थितिका विचार करते हुए, कुमार अवस्था, युवावस्थाके प्रारंभकाल व युवावस्थाकी मध्यम स्थितिमें उनके जीवनका अवलोकन करने पर उनकी असाधारण जितेन्द्रियताका हमें दर्शन हो सकता है । पंचेन्द्रिय के विषयके

प्रति उनके विचारको देखते हुए `अप्रतिम वैराग्य' उनके वचनोंमें जगह-जगह देखने को मिलता है । जीवनके उत्तरार्धमें तो उन्होंने जैसे भर जुवानीमें सर्वसंग परित्याग किया हो वैसे आहार आदिका संक्षेप भी कर दिया था । किसी भी इन्द्रियके विषयने उन्हें आकर्षित किया हो, ऐसा ढूँढ़ने जाये तो भी नहीं मिले ऐसा है । संक्षेपमें ऐसा अवश्य कह सकते हैं कि, वे गृहस्थवेशमें भी एक महान योगिराज थे ।

ꕥ सहजता :- सहज आत्मस्वरूपके साथ अभेद भावसे वर्तती ज्ञानीपुरुषकी दशामें सहजता उत्पन्न हो जाती है । जो कि ज्ञानदशाके अनेक मुख्य लक्षणोंमे से एक मुख्य लक्षण है । कृपालुदेवकी दशामें भी सहजता जगह-जगह देखनेको मिलती है । जिसका उल्लेख उन्होंने पत्रांक ६१९ में किया है : ``**....जो सहजमें बन आये उसे करनेकी परिणति रहती है;**'' यानी कि वैसी परिणतिमें सहजता करनी नहीं पड़ती बल्कि आराधक दशाके कारण ऐसी सहजता उत्पन्न हो जाती है ।

ꕥ लोकोत्तर सरलता :- उनकी सरलताका प्रकार तो वास्तवमें वंदनीय है। मुमुक्षुओंसे अत्यंत उच्च कोटिकी ज्ञानदशा को संप्राप्त होनेपर भी, उन्होंने अपने परिणामोंका निवेदन (अस्थिरताके वश अल्पदोषयुक्त हो, उसे भी) अनेक पत्रोंमें अत्यंत सरलभावसे किया है। जिसका अनुसरण करते हुए कृपालुदेवके जीवनको स्वयं बोधस्वरूप जानकर मुमुक्षुओंने भी अपने दोषोंका निवेदन करनेकी सरलता प्राप्त की थी। शिष्य अगर ज्ञानी सद्गुरुके आगे अपने दोषोंका निवेदन करे, तो वह तो उचित ही है, लेकिन ज्ञानी अपने दोषोंका निवेदन करे, वह तो लोकोत्तर सरलता है। कृपालुदेवके वचनामृतोंमें ऐसी अलौकिक सरलताका दर्शन जगह-जगह होता है।

ঃঃ **मध्यस्थता :-** कृपालुदेवकी मध्यस्थता असाधारण थी । जिसके प्रभावसे आज भी उनके अक्षरदेहरूप वचनामृतोंसे आकर्षित होकर भिन्न -भिन्न संप्रदायोंसे अनेक पात्र जीव संप्रदायबुद्धिका त्याग करके, मूलमार्गको स्वीकार करने लगे हैं । जैनके अलावा अन्य मत सम्बन्धि उनका पत्रव्यवहार समकालीन प्रख्यात विद्वान् श्री मनसुखराम सुरीराम त्रिपाठी एवं श्री मोहनदास करमचंद गांधी (महात्मा गांधी) के साथ हुआ था, जिसमें उन्होंने अत्यंत मध्यस्थतापूर्ण उनके पत्रोंका प्रत्युत्तर दिया है । जो कि मध्यस्थता प्रगट करनेके लिये मुमुक्षुजीवको वारंवार अनुप्रेक्षा करने योग्य है । आज अनेकानेक जैनेतर लायक मुमुक्षुओंको कृपालुदेवके वचनामुतके प्रति जो बहुमान व भक्ति स्फुरित होती है, वह उनकी मध्यस्थताका प्रबल व जीवंत उदाहरण है । उनका पंद्रह सालकी उम्रमें लिखा हुआ यह वचनामृत (पुष्पमाला-१५) अत्यंत प्रसिद्ध है : ``**तूँ चाहे जिस धर्मको मानता हो, मुझे उसका पक्षपात नहीं है । मात्र कहनेका तात्पर्य यह है कि जिस मार्गसे संसारमलका नाश हो, उस भक्ति, उस धर्म और उस सदाचार का तूँ सेवन कर ।**'' इस तरह मध्यस्थभावसे किसी भी धर्मकी चर्चा करने पर भी वे असाधारण विचिक्षणतासे मूलमार्ग (-श्री तीर्थंकरदेवके मार्ग) की उत्कृष्टताका प्रतिपादन / स्थापना करनेमें चुके नहीं हैं; अनेक जीवोंको सन्मार्गमें लगाया है । जिसके बदलेमें उनके जितने भी गुणानुवाद करें, कम पड़ते हैं ।

ঃঃ **गुण गंभीरता :-** दुर्लभ एवं महान ज्ञानदशा प्राप्त होने पर भी वे अप्रगट-गुप्त रहना चाहते थे, जिससे बाह्य प्रसिद्धि जो कि मोक्षमार्गके लिये बहुत प्रतिकूल है, उससे बच सकें । उसका निर्देश पत्रांक-१९२ में मिलता है : ``**इसलिये अनुरोध है कि हम अभी कोई परमार्थज्ञानी हैं अथवा समर्थ हैं ऐसी**

बात प्रसिद्ध न करें; क्योंकि यह हमें वर्तमानमें प्रतिकूल जैसा है।" और पत्रांक : १७० में ऐसे वचन देखनेको मिलते हैं : "**इसलिये अभी तो केवल गुप्त हो जाना ही योग्य है । एक अक्षर भी इस विषयमें कहनेकी इच्छा नहीं होती.....सर्व प्रकारसे गुप्तता रखी है । अज्ञानी होकर वास करनेकी इच्छा बना रखी है ।**"

❀ परेच्छाचारिता :- Eआत्मपरिणतिमें अखंडरूपसे रहनेके लिये यानी कि बाधा नहीं हो तद् हेतु उन्होंने बाह्य प्रवृत्तिमें दूसरोंकी इच्छाका अनुसरण करनेकी नीति अपनाई थी । इस प्रकारकी विचक्षणता उनके पत्रांक ३७६ में देखनेको मिलती है : "**अभी जिस प्रवृत्तियोगमें रहते हैं वह तो बहुत प्रकारकी परेच्छाके कारणसे रहते हैं**" और भी पत्रांक ३१७ में भी ऐसे वचन द्रष्टव्य हैं : "**चित्त प्राय: वनमें रहता है, आत्मा तो प्राय: मुक्तस्वरूप लगता है । वीतरागता विशेष है । बेगारकी भाँति प्रवृत्ति करते हैं । दूसरोंका अनुसरण भी करते हैं।**"

❀ सम्यक् आचरणा :- परम कृपालुदेवके बाह्य संयोगकी अपेक्षा से सामान्य मनुष्योंके जैसे ही सांसारिक प्रवृत्तिमें प्रवृत्ति करते हुए दिखने पर भी, अंतरंगमें एकदम असंगवृत्तिसे रह सकते थे। क्योंकि उन्हें किसी भी प्रकार के संयोगमें स्वपना अनुभवगोचर नहीं होता था । (देखिये पत्रांक :-३२९) इसके अलावा परानुकंपासे भी उदय को वेदन करने का उनसे बना था । जिसका उल्लेख उन्होंने पत्रांक-४०८ में इस प्रकारसे किया है : "**तथापि जिसमें स्नेह नहीं रहा, अथवा स्नेह रखनेकी इच्छा निवृत्त हुई है, अथवा निवृत्त होने आयी है, ऐसे इस संसारमें कार्यरूपसे-कारणरूपसे प्रवर्तन करनेकी इच्छा नहीं रही, उससे निवृत्ति ही आत्मामें रहा करती है, ऐसा होनेपर भी उसके अनेक प्रकारके संग-**

प्रसंगमें प्रवर्तन करना पड़ता है ऐसा पूर्वमें किसी प्रारब्धका उपार्जन किया है, जिसे समपरिणामसे वेदन करते हैं तथापि अभी भी कुछ समय तक वह उदययोग है, ऐसा जानकर कभी खेद पाते हैं कभी विशेष खेद पाते हैं, और विचारकर देखनेसे तो उस खेदका कारण परानुकंपा ज्ञात होता है।" पत्रांक-३३९में व्यवहारिक प्रवृत्ति सम्बन्धी उनके वचनामृतोंको लक्ष्यमें लेने जैसा है : ``**अभी जो कुछ व्यवहार करते हैं, उसमें देह और मनको बाह्य उपयोगमें प्रवृत्त करना पड़ता है । आत्मा उसमें प्रवृत्त नहीं होता । क्वचित् पूर्वकर्मानुसार प्रवृत्त करना पड़ता है, जिससे अत्यंत आकुलता आ जाती है । जिन कर्मोंका पूर्वमें निबंधन किया गया है, उन कर्मोंसे निवृत्त होनेके लिये, उन्हें भोग लेनेके लिये, अल्पकालमें भोग लेनेके लिये, यह व्यापार नामके व्यवहारिक कामका दूसरेके लिये सेवन करते हैं ।**" ऐसे व्यवहारिक कार्य करते हुए भी उनके परिणामकी स्थिति किस प्रकारकी रहती थी, वह पत्रांक-३४७ में दर्शित होती है : ``**जानते हैं कि जो परिणाम बहुत कालमें होनेवाला है वह उससे थोड़े कालमें प्राप्त होनेके लिये वह उपाधियोग विशेषत: रहता है... अभी यहाँ हम व्यवहारिक काम तो प्रमाणमें बहुत करते हैं, उसमें मन भी पूरी तरह लगाते हैं, तथापि वह मन व्यवहारमें नहीं जमता, अपनेमें ही लगा रहता है, इसलिये व्यवहार बहुत बोझारूप रहता है ।**" इस तरह प्रारब्धकी निवृत्तिके हेतु वे उदयको सम्यक् प्रकारसे वेदन करते थे। उनका ऐसा सम्यक् आचरण था । इस सम्बन्धमें उनकी आत्मशक्ति बलवान होनेके कारण उदयकालमें विशेष पुरुषार्थसे पूर्वकर्मकी विशेष निर्जराके हेतु उपाधियोगका त्याग करनेके बजाय वे सम्यक् प्रकारसे पूर्वकर्मको भोग लेते थे । उनकी आध्यात्मदशाका

अवलोकन करते हुए यह एक रहस्यभूत विषय समझमें आता है। इसके सम्बन्धमें स्पष्ट उल्लेख पत्रांक ३९८में है: ``**अभी जो उपाधियोग प्राप्त हो रहा है, यदि उस योगका प्रतिबन्ध त्यागनेका विचार करे तो वैसा हो सकता है; तथापि उस उपाधियोगको भोगनेसे जो प्रारब्ध निवृत्त होनेवाला है, उसे उसी प्रकारसे भोगनेके सिवाय दूसरी इच्छा नहीं होती; इसलिये उसी योगसे उस प्रारब्धको निवृत्त होने देना योग्य है, ऐसा समझते हैं;...**'' ऐसा होने पर भी, अंतरंग पारमार्थिक निवृत्त दशाको बाह्य उपाधि व्यवहारसे अनुकूल नहीं है, अत: उन्हें उपाधिसे छूटनेकी तीव्र वृत्ति रहा करती थी । जिसका उल्लेख उन्होंने पत्रांक ५६९ में किया है : ``**अब इस उपाधिकार्यसे छूटनेकी विशेष-विशेष आर्त्ति हुआ करती है, और छूटे बिना जो कुछ भी काल बीतता है, वह इस जीवकी शिथिलता ही है, ऐसा लगता है; अथवा ऐसा निश्चय रहता है । जनकादि उपाधिमें रहते हुए भी आत्मस्वभावमें रहते थे, ऐसे आलंबनके प्रति कभी भी बुद्धि नहीं जाती...नित्य छूटनेका विचार करते हैं और जैसे वह कार्य तुरंत पूरा हो वैसे जाप जपते हैं ।**'' इस प्रकारसे प्रवर्तती उनकी सम्यक् आचरणा नि:संदेह अभिवंदनीय है, अनुकरणीय है ।

❀ उपाधिमें समाधि :- कृपालुदेवका व्यवहार उपाधिमें रहना पूर्व प्रारब्धयोगसे होता था; जो कि आराधकदशासे प्रतिकूल होने पर भी, वे अंतरंग समाधिभावमें निरंतर रहते थे । जिसका उल्लेख उनके अनेक पत्रोंमें देखनेको मिलता है । जिसका नमूना पत्रांक २४७ में इस प्रकारसे है : ``**चित्तकी दशा चैतन्यमय रहा करती है; जिससे व्यवहारके सभी कार्य प्राय: अव्यवस्थासे करते हैं। हरीच्छा** (**भवितव्य**) **को सुखदायक मानते हैं । इसलिये जो उपाधियोग विद्यमान है, उसे भी समाधियोग मानते हैं ।**'' अर्थात्

सम्यक्ज्ञानमें चारों पहलूसे, सभी प्रकारके संयोग-वियोगमें कहीं भी असमाधान नहीं होता; परन्तु सहज समाधिभाव रहता है । जो कि उन्होंने कई बार पत्रके द्वारा बताया है। पत्रांक:४०८ व ७१०के वचनामृत (उदय-प्रवृत्तिमें खेद, फिर भी सम्यक्प्रकारसे समता भावसे वेदन करनेमें आते हैं ।) उसके उदाहरणरूप हैं।

उनकी आराधना के साथ-साथ वर्तती दूसरी अनेकविध विशेषताएँ भी उल्लेखनीय हैं । अंतर आराधनाके साथ-साथ उसके अनुरूप व अनुकूल ऐसे बाह्य परिणमनमें अनेकविध प्रकारसे उनके अनेक गुण भी मुमुक्षुजीवको अवलोकनमात्रसे उपकारी हों ऐसे हैं। जिसका यत्किंचित् वर्णन इस प्रकारसे है;

ঃ **सातिशय ज्ञानयोग :-** परमकृपालुदेवके चित्तमें जब किसी भी बातकी स्फुरणा होती थी तब वह बहुतसे नययुक्त होती थी, यानी कि किसी एक बातके समर्थनमें अनेक नयोंकी संधि उनके ज्ञानमें स्फुरित हो आती, वैसा उल्लेख उन्होंने अपने शब्दोमें पत्रांक-२२३ में किया है । ``**लेखनशक्ति शून्यताको प्राप्त हुई जैसी होनेका कारण एक यह भी है कि चित्तमें उद्भूत बात बहुत नयोंसे युक्त होती है, और वह लेखनमें नहीं आ सकती है; ...**(**संभवित नहीं है**)'' तद्उपरांत उनके उपयोगकी तीक्ष्णता-तीव्रता-विशालताका उल्लेख पत्रांक-९१७ में देखनेको मिलता है : ``**एक श्लोक पढ़ते हुए हमें हज़ारों शास्त्रोंका भान होकर उसमें उपयोग घूम आता है** (**अर्थात् रहस्य समझमें आ जाता है**) **।**''

ঃ **विवेकदृष्टि :-** परम कृपालुदेवकी विवेकदृष्टिका विचार किया जाय तो किसी भी जीवका मस्तक झुक जाय ऐसी है । कोई भी लौकिक अथवा पारमार्थिक व्यवहार सम्बन्धित प्रश्न उपस्थित होकर उनके सामने आता है तब उनका उपयोग चारों पहलूसे

उसका विचार करता हुआ दिखता है । इस विषयमें उनके पत्रोंमें विभिन्न कोटिके मुमुक्षुओंको जो मार्गदर्शन दिया है, इसका अगर विस्तार किया जाये तो इस विषयमें एक पूरी पुस्तक बन जाये ऐसा है । लेकिन संक्षेपमें इतना जरूर कह सकते हैं कि सम्यक्ज्ञानसे सुशोभित उनके ज्ञानका यथार्थपना उनके अनेक प्रकारके मार्गदर्शनमें प्रतीत होता है, अर्थात् उनकी ज्ञानदशाकी प्रतीति कराता है, और जिससे उनके प्रति भक्ति उत्पन्न होनेका सबल कारण प्राप्त होता है ।

ꕥ गुण-प्रमोद :- इस विषयमें उनका गुण-ग्राहकपना अथवा गुण प्राप्तिकी दृष्टि बहुत तीक्ष्ण थी, ऐसा समझमें आता है । वे चारों अनुयोगोंमेंसे सर्वत्र आत्मगुण प्रगट करनेका आशय खींच लेते थे । इतना ही नहीं, अन्यमतमें जन्म हुआ हो ऐसे मार्गानुसारी महात्माओंके वचन भी आत्मगुण प्रगट होनेमें किस प्रकारसे प्रेरणा करते हैं, ऐसा आशय खींचकर व्यक्त करनेवाले उनके वचन शायद वर्तमान साहित्यमें अजोड़ हैं। इसके अलावा वे किसी भी व्यक्तिके दोषोंको गौण करके, उसके गुणके अल्प अंशको भी मुख्य करते थे । जिसके संदर्भमें उनकी एक पंक्तिका यहाँ उद्धरण करने योग्य है : ``**गुणप्रमोद अतिशय रहे, रहे अंतर्मुख योग ।**'' जैनदर्शनके अनुयोगके संदर्भमें प्रवाहित हुआ यह पद्य, गुणप्रमोदकी फलश्रुतिको अंतर्मुखतामें अभिव्यक्त करता हुआ प्रवाहित हुआ है । जो हमें उनकी गुण-प्रमोदताका दर्शन कराता है।

ꕥ वात्सल्य और प्रभावना :- अपनी आत्मदशासे जिन्होंने `निश्चयप्रभावना' प्रगट की है, ऐसे धर्मात्माकी ऐसी नीति होती है कि `व्यवहारप्रभावना" के प्रसंगमें जो जीव उनके समीपमें-सानिध्यमें आता है उसका स्थितिकरण वे बहुत विचिक्षणतासे करते हैं, और वात्सल्य करते हैं । यह व्यवहार प्रभावनाके मुख्य अंग हैं । महान्

ज्ञानी श्रीमद् राजचंद्रजी व उनके समीपमें आनेवाले मुमुक्षुजीवोंके बीचमें हुए पत्रव्यवहारकी अगर इस दृष्टिकोणसे गवेषणा की जाय तो इस विषयमें उनकी असाधारण विचक्षणताका व प्रज्ञाका दर्शन होगा। किसी भी अन्यमत पंथमेंसे आनेवाले जीवको वे प्रथम जिज्ञासामें रखकर, मृदु भाषामें आवकार देते हैं और वात्सल्यता, मध्यस्थता व सरलतापूर्वक उसके साथ यथोचित् व्यवहार/वर्तन/उपचार/मार्गदर्शन करते हैं कि जिससे आनेवाला मुमुक्षु ज्ञानीसे कतई दूर न हो जाय । उसमें भी श्री सौभाग्यभाई जैसे अनेक मुमुक्षुओंको तो जैसे हाथ पकड़कर संसारसमुद्रमें से बाहर निकालते हो, बचा लेते हों- ऐसी परिस्थिति स्पष्ट मालूम पड़ती है ।

❋ निष्कारण कारुण्यवृत्ति :-ज्ञानदशाके अनुरूप उक्त अनेक विशेषताओंके अलावा, अन्य मुमुक्षुजीवोंके प्रति उनकी अभिन्नभावसे निष्कारण कारुण्यवृत्ति भी असाधारण थी । इस विषयमें उनके वचन पत्रांक-१९२ में द्रष्टव्य हैं; ``**हमारी वृत्ति जो करना चाहती है, वह निष्कारण परमार्थ है,...**'' और वे पत्रांक-३९८में कहते हैं कि : ``**कालका ऐसा स्वरूप देखकर हृदयमें बड़ी अनुकम्पा अखंडरूपसे रहा करती है। अत्यन्त दुःखकी निवृत्तिका उपायभूत जो सर्वोत्तम परमार्थ है उस सम्बन्धी वृत्ति जीवोंमें किसी भी प्रकारसे कुछ भी वर्धमानताको प्राप्त हो, तभी उन्हें सत्पुरुषकी पहचान होती है, नहीं तो नहीं होती । वह वृत्ति सजीवन हो और किन्हीं भी जीवोंको- बहुतसे जीवोंको-परमार्थसम्बन्धी मार्ग प्राप्त हो, ऐसी अनुकम्पा अखंडरूपसे रहा करती है;**'' तदोपरांत पत्रांक-५२३में भी वे कहते हैं कि : ``**अनेक जीवोंकी अज्ञान दशा देखकर, फिर वे जीव `हम कल्याण करते हैं' अथवा `हमारा कल्याण होगा,' ऐसी भावना या इच्छासे अज्ञानमार्गको प्राप्त होते हुए देखकर, उसके लिये अत्यंत करुणा**

उद्भव होती है, और किसी भी प्रकारसे यह दूर करने योग्य है, ऐसा हो जाता है; अथवा वैसा भाव चित्तमें जैसाका तैसा रहा करता है ।''

ॐ अलौकिक विनम्रता :- कृपालुदेवके जीवनमें जिस प्रकारकी विनम्रता देखनेको मिलती है वैसा दूसरा दृष्टांत कहीं भी देखनेको नहीं मिलता है । वैसी अजोड़ विनम्रताके दर्शन उनके वचनामृतोंमें अनेक प्रकारसे होते हैं । वे पत्रांक-२१० में लिखते हैं कि : ``**हमपर आपकी चाहे जैसी भक्ति हो, परन्तु सब जीवोंके और विशेषत: धर्मजीवके तो हम त्रिकालके लिये दास ही हैं ।** ''कृपालुदेवके चित्तकी अध्यात्ममय दशाके कारण मुमुक्षुजीवोंको प्रत्युत्तर देरसे लिखना अथवा प्रत्युत्तर नहीं लिख सकना बनता था, जिसके कारण उन्होंने अनेक पत्रोंमें क्षमा माँगी है। यद्यपि ऐसा होनेका कारण उनकी महान् अध्यात्मपरिणति है; इसलिये वे क्षमा माँगनेके योग्य (तो) नहीं हैं, फिर भी उन्होंने ऐसा होने पर मुमुक्षुजीवोंसे क्षमा माँगी है । इस प्रकार उनकी अलौकिक / असाधारण विन्रमता प्रदर्शित होती है । इसके अलावा पत्रांक-५२३ उनके अंतरंगको प्रदर्शित करता है : ``**बाह्य माहात्म्यकी इच्छा आत्माको बहुत समयसे नहीं जैसी ही हो गयी है, अर्थात् बुद्धि प्राय: बाह्य माहात्म्यकी इच्छा करती हुई प्रतीत नहीं होती ।**'' उनकी स्मृति असाधारण होनेके कारण शतावधान आदि प्रयोग से उनकी ख्याति बढ़ी थी, फिर भी २३वें वर्षमें लिखी हुई `समुच्चयवयचर्या' में उनके नम्रता सूचक वचन इस प्रकार हैं : ``**सात वर्षसे ग्यारह वर्ष तकका समय शिक्षा लेनेमें बीता । आज मेरी स्मृतिको जितनी ख्याति प्राप्त है, उतनी ख्याति प्राप्त होनेसे वह किंचित् अपराधी हुई है;**'' इसके अलावा पत्रांक-७०८ में उनके निजावलोकन पूर्वक वचन इस प्रकार से हैं : ``**धर्म स्थापित करनेका मान बड़ा है;**

उसकी स्पृहासे भी कदाचित् ऐसी वृत्ति रहे, परन्तु आत्माको बहुत बार कसकर देखनेसे उसकी सम्भावना वर्तमान दशामें कम ही दिखती है ।'' यह वचनामृत ऐसा सूचित करता है कि उन्होंने अपूर्व आत्मजागृतिपूर्वक मानकषाय पर विजय प्राप्त की थी । जो कि मुमुक्षुजीवको अनुसरण करनेके लिये उपकारी है और वास्तवमें भक्ति करने योग्य है ।

❀ निर्ग्रंथताकी भावना :- उनके परिणमनमें नोंध करने लायक एक पहलू यह भी है कि उन्हें पूर्णताके ध्येयके कारण यथार्थ पुरुषार्थकी उग्रता वर्तती थी और उस कारणसे उन्हें युवानवयमें ही सर्वसंगपरित्याग करके बाह्याभ्यंतर निर्ग्रंथ होनेकी उत्कट भावना रहती थी । इस विषयमें, उन्होंने अपनी अंतर भावना संस्मरणपोथी १(४५) में व्यक्त की है : ``**हे जीव ! अब तूँ संगनिवृत्तिरूप कालकी प्रतिज्ञा कर, प्रतिज्ञा कर ! ....ऋषभ आदि सर्व परम पुरुषोंने अन्तमें ऐसा ही किया है**'' पुन: उनके हृदयमें रही हुई यह भावना पत्रांक ४५३ में भी इन शब्दोंमें स्फुरित हुई है; ``**मनमें ऐसा ही रहा करता है कि अल्पकालमें यह उपाधियोग मिटकर बाह्याभ्यंतर निर्ग्रंथता प्राप्त हो तो अधिक योग्य है । तथापि यह बात अल्पकालमें हो ऐसा नहीं सूझता, और जब तक ऐसा नहीं होता तब तक वह चिन्ता मिटनी सम्भव नहीं है।**'' इसी प्रकारकी भावना उन्होंने पत्रांक ५६०में व्यक्त की है : ``**उसमें अवश्य आत्मदशाको भुलाने जैसा सम्भव रहे, वैसे उदयको भी यथाशक्ति समपरिणामसे सहन किया है । यद्यपि उस सहन करनेके कालमें सर्वसंगनिवृत्ति किसी तरह हो तो अच्छा, ऐसा सूझता रहा है;**'' इसके अलावा उनकी बाह्याभ्यंतर निर्ग्रंथताकी भावनाकी अभिव्यक्ति करनेवाला ``अपूर्व अवसर'' काव्य तो जगप्रसिद्ध है ही । धन्य है उनकी आराधना !!

ꕥ कथन-अविरुद्धता :- जिन्हें अतीन्द्रिय प्रत्यक्षज्ञानमें निजात्मस्वरूप अनुभवगोचर हुआ हो, ऐसे किसी भी ज्ञानीपुरुषके वचनमें पूर्वापर वचन-विरुद्धता कहीं भी होती ही नहीं। ये खास लक्ष्यमें रखने जैसा है। आत्मपदार्थमें कुछएक परस्पर विरुद्ध धर्म हैं और वे एक ही पदार्थकी सत्तामें रहने के कारण उनकी अभिव्यक्ति स्वानुभवविभूषित पुरुषके वचनमें ही हो सकती है। दूसरे जीवोंको, कि जिन्हें, स्वानुभव नहीं है परन्तु शास्त्रका पठन-पाठन है वैसे जीवोंको पदार्थदर्शन नहीं होनेके कारण पूर्वापर विरोधपना आये बिना नहीं रहता । ज्ञानीपुरुषके वचनोंका पूर्वापर अविरोधपना-वह खास प्रकारका विलक्षण स्वरूप है और वह जिसको समझमें / पहचानमें है उसको तो उन ज्ञानीके प्रति अत्यंत अहोभाव सहज उत्पन्न होता है । ऐसी कथन-अविरुद्धता कृपालुदेवके वचनोंमें रही है ।

ꕥ विधि-दर्शकता :- बारह अंगका सारभूत सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषय अगर कोई है तो वह अंतर्मुख होकर स्वस्वरूप प्राप्तिकी विधि / कार्यपद्धति का है और वह स्वानुभवी ज्ञानीपुरुषकी वाणीके अलावा कहीं भी प्राप्त होना असम्भवित है । स्वस्वरूपप्राप्तिकी विधिकी सूक्ष्मता व अंतरध्वनिकी अभिव्यक्ति एकमात्र ज्ञानीपुरुषकी वाणीमें ही होती है, ऐसी वस्तुस्थिति है । कृपालुदेवने इस विषयमें (ज्ञानीपुरुषकी वाणी सम्बन्धित) कुछ एक लक्षण पत्रांक ६७९ में प्रसिद्ध किये है; उसमें आत्मभान करनेका आशय, पदार्थदर्शनके कारण विरुद्ध स्वभावोंका भी अविरुद्ध निरूपण, आत्मार्थ उपदेशकपना, अपूर्वस्वभावके अपूर्व अर्थका निरूपण, आत्मजागृतिके कारण सतत जागृत करनेवाली, शुष्कतारहित अध्यात्म निरूपण, वास्तविक व यथास्थित पदार्थ निरूपण इत्यादि लक्षणोंको कृ.देवने अपने स्वानुभव से दर्शाया है। और इसलिये वर्तमान निकृष्ट कालमें भी अखंड मोक्षमार्ग जीवित रह पाया है।

ꕥ धर्म प्रवृत्तिमें विचक्षणता :- श्री तीर्थंकरदेवके मार्गको

प्रकाशित करनेकी शक्ति होने पर भी यानी कि सामर्थ्य होने पर भी (पत्रांक : ७०८) दूसरे जीवोंको शंका हो ऐसा बाहरमें प्रारब्ध योग होनेसे उन्होंने मूलमार्गका उपदेश नहीं किया है - ऐसा अनेक पहलुओंसे सोचा था । इस विषयमें लिखे गये पत्रांक-५०० व ५८२ विशेषरूपसे गवेषणा करने योग्य हैं। पत्रांक ६२१ में लोगों को नुकसान नहीं हो इस दृष्टिकोणसे भी कृपालुदेवने समाज के बीच (-समष्टिगतरूपसे) धर्मप्रकाशक रूपसे प्रवृत्ति नहीं की है ऐसा उल्लेख उनके शब्दोंमें इस प्रकार है: ``**इस आत्माके सम्बन्धमें अभी बाहर किसी प्रसंगकी चर्चा होने देना योग्य नहीं है; क्योंकि अविरतरूप उदय होनेसे गुणाभिव्यक्ति हो तो भी लोगोंको भास्यमान होना कठिन पड़े; और उससे विराधना होनेका कुछ भी हेतु हो जाय; तथा पूर्व महापुरुषके अनुक्रमका खंडन करने जैसा प्रवर्तन इस आत्मासे कुछ भी हुआ समझा जाय ।**'' उनकी इस विषयमें अनेक पहलुओंसे काफी सूक्ष्म विचारणा चली थी इसका उल्लेख उनकी संस्मरणपोथी-१(७३) में मिलता है; ``**एक राज्यके प्राप्त करनेमें जो पराक्रम अपेक्षित है उसकी अपेक्षा अपूर्व अभिप्रायसहित धर्म संततिका प्रवर्तन करनेमें विशेष पराक्रम अपेक्षित है । थोड़े समय पहले तथारूप शक्ति मुझमें मालूम होती थी ।**'' तथारूप शक्ति खुद में थी फिर भी अनेकविध कारणोंसे वे गुप्त रहे थे । उसमेंसे एक सूक्ष्म बात, अति गूढ़ वचनोंमें इसी संस्मरणपोथीमें (१/७३में) देखनेको मिलती है : ``**दर्शनकी रीतिसे इस कालमें धर्मका प्रवर्तन हो इससे जीवोंका कल्याण है अथवा संप्रदायकी रीतिसे प्रवर्तन हो तो जीवोंका कल्याण है, यह बात विचारणीय है । संप्रदायकी रीतिसे वह मार्ग बहुतसे जीवोंको ग्राह्य होगा, दर्शनकी रीतिसे वह वीरल जीवोंको ग्राह्य होगा । यदि जिनाभिमत मार्ग निरूपण करने योग्य गिना जाये,**

तो वह संप्रदायके प्रकारसे निरूपित होना विशेष असंभव है। क्योंकि उसकी रचनाका सांप्रदायिक स्वरूप होना कठिन है। दर्शनकी अपेक्षासे किसी ही जीवके लिये उपकारी होगा इतना विरोध आता है ।"

उपरोक्त प्रकारसे उन्हें मार्ग प्रवर्तनकी रीति नीतिके विषयमें बहुत सूक्ष्म व गहन विचार आये हैं, और परस्पर विरूद्ध बातोंका ऊँडा (गहन) विचार चला है, ऐसा उनके उक्त वचनोंसे समझमें आ सकता है । ये सभीके निष्कर्षरूप से उन्होंने स्वयंकी आराधनाको मुख्य करके, गौणरूपसे जो-जो जीव पात्र दिखे उनके बीच द्रव्य, क्षेत्र, काल व भावकी मर्यादामें रहते हुए, यथार्थरूपसे व योग्य रीतिसे मार्ग-प्रवर्तनकी प्रवृत्ति की है । ऐसा समझमें आता है ।

स्वयंके उदयभाव व औदयिक संयोगोंकी परिस्थितिको देखते हुए, शासनकी प्रवर्तनाके अंतरंग गुणोंके होने पर भी, शासननायक अथवा उपदेशके स्थानमें रहकर, उन्होंने धर्मप्रवृत्ति नहीं की है, यह इस विषयमें उनकी गहन विचारणा व दीर्घदर्शिताको प्रदर्शित करता है ।

गुण संकीर्तक :
श्रद्धेय पूज्य `भाईश्री' शशीभाई

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीका आध्यात्मिक जीवन परिचय

संवत १९४६, वैसाख सुदी बीज, रविवारके दिन भारतवर्षमें दो सूर्यका उद्योत हुआ, जिसमें एक सूर्यका उदय तो चिलचिलाती गर्मी फैलानेके लिये हुआ, जब कि दूसरेका उदय लोगोंके अज्ञान अंधकारको मिटाकर सम्यक्ज्ञानप्रकाश फैलानेके लिये हुआ।

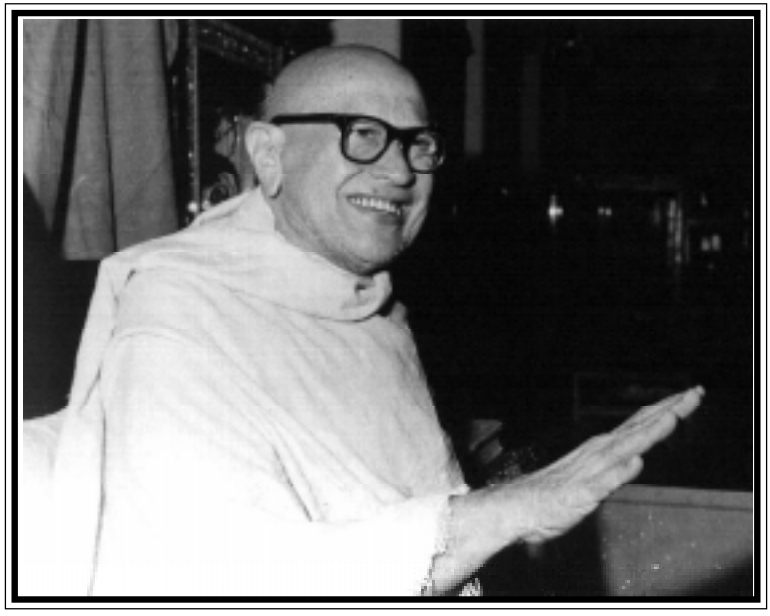

अनादिकालसे परमेंसे सुख लेनेके लिये आकुलित हुई परिणतिको परम शांतरसमय अमृतपान करानेके लिये ही मान लो यह सूर्यका

उदय हुआ है। सौराष्ट्रके उमराला नामके छोटेसे गाँवमें आज लोगोंमें आनंदका माहोल छाया हुआ है। कुदरत आनंदसे प्रमुदित हो उठी है। हररोज़ चिलचिलाती गर्मी फैलाता सूर्य भी आज थोड़ा शांत लगता है। क्या कारण है इसका ? क्यों लोग आनंदमें उल्लसित हो रहे हैं ? वातावरणमें इतनी प्रफुल्लितता क्यों ? भारतवर्षमें बहुरत्न वसुंधरको आज इतनी थरकन क्यों ? आकाशमें ये दुंदुभी नाद सुनाई देनेका क्या कारण है ? अरे ! इसका कारण ये है कि, आज मोतीचंदभाई और उजमबा माताके यहाँ एक पवित्र आत्माका आगमन हुआ है। सगे-संबंधियोंको इस बालककी मुद्रा देखकर तृप्ति नहीं हो रही है। माता-पिताके हर्षकी तो कोई सीमा नहीं है। जोषी जोष देखने आया है। बालकको विस्मित नेत्रसे देखता ही रह गया फिर कहा कि ``ये बालक तो जगतका तारणहार है। ये तो कोई-कोई असाधारण आत्मा पधारे हैं।'' जोषीके वचन सुनकर माता-पिताका आनंद दुगना हो गया। बालकका नाम `**कानजी**' रखा गया।

उमराला जैसे छोटेसे गाँवमें `कानजी' का जीवन आनंदसे बीत रहा है। अतिशय गोरो व कोमल शरीरको देखकर कानजीके मित्र उसे `मढ़म' कहकर चिढ़ाते तो कभी-कभी घरवाले भी `पूई' कहकर बुलाते। अंतरंगमें छायी हुई पवित्रता, कोमलता, निस्पृहता व उदासीनता जैसे मानो बाह्य देहमें भी फैली हुई है। बहुत बुद्धिशाली होनेसे शालामें प्रायः प्रथम नंबरमें पास होने लगे। सर्व प्रथम उन्होंने सिखा : `सिद्धोवर्णसमाम्नायः' (वर्ण उच्चारका संप्रदाय स्वयंसिद्ध है।) लौकिक अभ्यासके साथ-साथ जैनशालामें भी अभ्यास करने लगे और वहाँ भी प्रथम ही रहे। जैनशालामें अभ्यास करते-करते लौकिक अभ्यासमेंसे रस उड़ गया अतः १३ सालकी उम्रमें छट्ठवीं कक्षा तक पढ़ाई करनेके पश्चात् पढ़ाई छोड़ दी। जो स्वयं लोगोंका तारणहार हो उसे इसप्रकारकी तुच्छ लौकिक पढ़ाईमें रस कहाँ से आता ? ऐसेमें

गाँवमें प्लेग नामका रोग फैल जानेसे खुद गारीयाधार आ गये। व्यवसाय हेतु मोतीचंदभाई संवत १९५१में पालेज आ गये अतः स्वयं भी पालेज आ गये।

`कानजी' शुरूसे सौम्यता, निर्दोषता, निडरता, प्रामाणिकता, निस्पृहता इत्यादि सद्‌गुणोंके धारक हैं। इसकी प्रतीति निम्नलिखीत प्रसंग परसे आ सकती है।

१७ सालकी उम्र है। कानजी दुकान पर बैठे हैं। उसवक्त दिवालीकी बक्षीस लेनेके लिये पुलिस आयी। बक्षीसके बारेमें थोड़ा वाद-विवाद चल गया और पुलिसवालें नाराज होकर चल गये। पुलिसने `कानजी' पर अफ़ीमका झूठा केस दाखिल कर दिया। बड़ोदाकी कोर्टमें साक्षी देनेकी बारी आयी। तब `कानजी' की प्रतिभा, निर्दोषता व निडरता देखकर न्यायाधिशने ऐसा कहा कि, इसे कटहरेमें नहीं बल्कि बाहर खड़ा रखो ! तीन घंटेकी पूछताछके दौरान `कानजी' ने बहुत निडरतापूर्वक, निःशंकतासे व प्रामाणिकतासे सारे प्रश्नोंके उत्तर दिये। तत्‌पश्चात् अदालत पालेज आयी और चुकादा हुआ कि, ये केस बिलकुल झूठा है। यहाँ तककी इस केसमें जो भी खर्च लगा हो इसकी वसुली पुलिससे की जा सकती है। परंतु ये तो थे विदेहकी वासी, करुणाके सागर, लौकिक न्याय-नीति पर चलनेवाले अलौकिक पुरुष ! इनकी तुलना आम लोगोंसे कहाँसे हो ? उन्होंने पुलिससे कुछ भी नहीं लिया और वह केस वहीं पूरा हुआ।

एक बार भागीदारके साथ दुकानके लिये माल खरीद करने बंबई गये। माल खरीद करके बंबईसे ट्रेईन द्वारा वापसीके दौरान माल-सामान काफी हो गया। उसवक्त भागीदारको कहा ज्यादा सामानके लिये भाड़ा-टिकट लेनेको कहा। भागीदारने कहा कि, `क्या जरूरत है टिकट लेनेकी ? यहाँसे एक बार बैठ गये फिर कौन पूछनेवाला है ? और तो और पालेजके स्टेशनमास्तर भी हमारी

पहचानवाले हैं इसलिये कुछ नहीं कहेंगे, ऐसे ही जाने देंगे।' उसवक्त तुरंत ही `कानजी' ने कहा कि, `नहीं, हमें ऐसा गलत काम नहीं करना है, शेष वजनके जितने पैसे लगे वह भरपाई कर दे।'

संवत १९६३में पालेजमें रामलीलाका नाटक पेश करनेवाली मंडली आयी। उसवक्त स्वयं रामलीला देखनेके लिये गये। बाहरमें वैराग्यसभर रामलीलाका पाठ रहा है तो भीतरमें कानजीकी हृदयोर्मीयों वैराग्यके शांतरसमें सराबोर होने लगी। मंगलमय उज्जवल भाविका सूचक व पूर्वमें आराधन द्वारा सिंचित पूर्वज संस्कारका एक अंकुर खिल उठा। वैराग्यकी ऐसी तो धुन चढ़ गई कि भीतरमें स्फुरणा हुई और रोम-रोमसे एक ध्वनि निकल पड़ी : `शिवरमणी रमनार तू, तुं ही देवनो देव' रोमांच उल्लसित हो गये और भावनाके प्रवाहमें ही बहते हुए बारह पंक्तियुक्त छः पदकी रचना हो गई। अहो ! धन्य है ऐसी उदासीनताको !! मुखमुद्रा पर सदाय अंकित वैराग्यरससभरता व नेत्रोंमेंसे झलकता बुद्धि व वीर्यका तेज एक असाधारणता व अलौकिकताके दर्शन करा रहे हैं।

संवत १९६४, उम्र है १८ साल। बड़ोंदामें सति अनसुयाका नाटक देखने गये। नाटक चल रहा है। सति अनसुया उसके पुत्रों पालनेमें सुलाकर झुला रही है और साथ-साथ गा रही है : `बेटा, शुद्धोसि, बुद्धोसि, निर्विकल्पोसि, उदासीनोसि....' बस ! फिर तो बहते हुए वैराग्यके झरनेमें स्वयं जैसे शुद्ध हो, बुद्ध हो ऐसा भास होने लगा। रुचिपूर्वक ग्रहण किये पूर्वके अध्यात्मके संस्कार फिरसे जागृत हो गये। एकबार भी यथार्थ रुचिपूर्वक ग्रहण किये गये स्वरूपके संस्कार निष्फल नहीं जाते।

पालेजमें दुकान पर व्यवसायके दौरान उक्त वैराग्यके प्रवाहके कारण व्यापारमें कहीं भी रस नहीं रहा। दुकानके कामसे समय मिलते ही स्वयं स्वाध्याय करने लगे। अंतरंग उदासीनता सहित

बाह्यमें ऐसी रसरहित प्रवृत्तिको देखकर घरवाले उन्हें 'भगत्' कहकर बुलाने लगे। दुनियादारीमें जो माहिर होते हैं उन्हें ऐसे लोग पागल लगते हैं। परंतु लोग जिन्हें पागल मानते हैं ऐसे 'भगत' प्रभुके पास पहले जाते हैं। ऐसे वैराग्य और उदासीनताके रससे सराबोर कानजीको दीक्षा लेनेके भाव हुए। पालेजमें पाँच साल ईमानदारीसे जिन्होंने व्यापार किया और जिनको संसारका अंत अब समीप है, जो थोड़े ही समयमें मुक्तिरूपी कामिनीके नाथ होनेवाले हैं, ऐसे 'कानजी' के लिये लखपतियोंकी कन्याके रीश्तेकी बात आने लगी। परंतु खुदकी इच्छा दीक्षा लेकर पूरा जीवन ब्रह्मचर्य पालन करनेकी होनेसे शादीके लिये साफ मना कर दी। प्रियजनोंके अभिप्रायसे विरुद्ध अपनी इस भावनामें, स्वयं अपने निर्णयमें मक्कम रहे और दीक्षा लेनेके लिये किसी योग्य गुरुकी खोजमें निकल पड़े। बहुतसे साधुओंको देखे, परंतु किसीमें मन नहीं लगा। अंततः बोटाद संप्रदायके हीराचंदजी महाराजके संम्पर्कमें आये, जहाँ कुछ ठीक लगनेसे उनके पास दीक्षा लेनेका निश्चित किया।

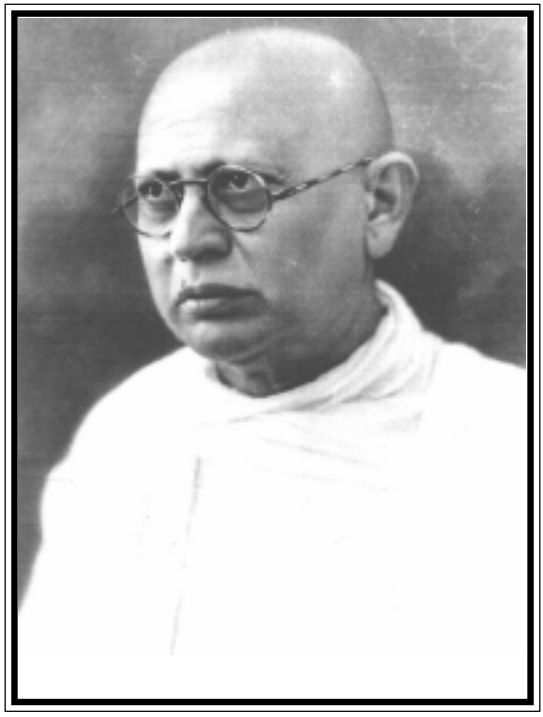

वि.सं. १९७०, मार्गशीर्ष सुदी ९, के दिन हाथीपर बैठे हुए दीक्षाका प्रसंग चल रहा है। हाथी पर बैठने जा रहे हैं कि सीढ़ीमें धोती फँस जानेसे फट गई। मनमें शंका उठी : जैसे कि कुछ गलत हो रहा है। क्या संकेत है कुदरतका ? क्या वस्त्रसहित मुनिपना नहीं होता है ? उनके द्वारा सनातन जैनधर्मका प्रचार होगा - इसका यह कुदरती संकेत था।

दीक्षा लेनेके बाद तुरंत ही श्वेताम्बर शास्त्रोंका गहन व गहरा अभ्यास शुरू हुआ। अभ्यासकी इतनी धुन रहती कि दूसरा व्यर्थ समय बिगडे वह पोसाता नहीं था। अंतरंगमें सत्य क्या है ? इसकी खोज चल रही है। संप्रदायकी रीत अनुसार पातराको रंग चढ़ानेमें समय जाये यह भी सुहाता नहीं है। एक दफा बोले कि, `ये क्या ? क्या स्वाध्याय छोड़कर ये करना ? उसवक्त गुरुमहाराजने कह दिया कि, `फिर तो पातरा नहीं रखते हो ऐसे गुरु ढूँढ़ लेना'' किसको पता था कि ये कानजीमहाराज पातरा रहित ऐसे कुंदकुंदाचार्यका मार्गकी बहुत प्रसिद्धि करनेवाले हैं ? संप्रदायकी प्रत्येक क्रियाओंका बहुत कड़ा व चुस्ततापूर्वक पालन कर रहे हैं। थोड़े समयमें ही लोगोंमें ऐसी बात चलने लगी कि `कानजीस्वामीके आगे-पीछे केवलज्ञान चक्कर काट रहा है।' इतनी प्रसिद्धि व प्रभावके बीचमें भी खुदको जिस सत्यकी खोज थी वह चालू ही रही। संप्रदायके शास्त्रोंकी बातोंका मेल बैठता नहीं है और स्वयंके अंतरपटमेंसे सैद्धांतिक बातकी स्फुरणा होना शुरू हो गई। जो निम्न प्रसंगसे दर्शनीय है।

दीक्षा लेनेके पश्चात् जाहिर सभामें प्रवचन दौरान कहा कि, `जीव स्वतंत्ररूपसे विकार करता है, कर्म विकार नहीं कराता। अपने उलटे पुरुषार्थसे जीव विकार करता है और अपने ही पुरुषार्थसे वह विकारको मिटाता है।' ऐसी सिंह गर्जना सुनते ही कायरोंके

कलेजे कापने लगे। परंतु उनके प्रभावके आगे कोई कुछ बोल न सका। देखिये ! अभी तो दिगम्बर शास्त्र हाथ नहीं लगे, इसके पहले ही भीतरसे संस्कार कैसे झलक रहे हैं !! जो स्वयं पूर्ण वीतराग होनेके लिये निकले, उन्हें वीतरागताके, संस्कार भीतरमेंसे ही स्फुरित होने लगते हैं। जो स्वयं प्रचंड पुरुषार्थ उजागर करके पूर्ण होनेके पथ पर निकले हो, उनकी वाणीमें पुरुषार्थ हिनताकी बात कहाँसे आती ? जिनका वीर्य भीतरसे ही ज़ोर करता हो उसे कौन रोक सके ? अहो ! धन्य है इनकी ऐसी शूरवीरताको !!

संवत १९७१ में वेजलका गाँवमें एक स्वप्न आया। स्वप्नमें ऐसा दिखा कि सारा आकाश शास्त्रोंसे भर गया है। जैसे मानो परमागममंदिरका संकेत आया !! अहो ! जिनकी निर्मल श्रुतज्ञानकी धारामेंसे सम्यक् मोक्षमार्गका रहस्योद्घाटन होना है और भरतक्षेत्रमें जिनके द्वारा शास्त्रोंकी प्रभावना होनेवाली है, उन्हें जैसे आगेसे कुदरती संकेत आने लगे !!

संवत १९७२ का फाल्गुन मास गुरुभाइयोंके बीच चर्चा चल रही है। गुरुभाई बार-बार ऐसा कहते थे कि `जैसा केवलीने देखा होगा, वैसा होगा। हम क्या कर सकते हैं ? केवलीने ऐसा देखा होगा तो पुरुषार्थ होगा' कुछ समय तो स्वयं ऐसी बात सुनते रहे। परंतु एक दिन उन्होंने कहा कि `केवलीने जैसा देखा होगा, वैसा होगा ये तो बराबर, परंतु जगतमें केवलज्ञान है इसकी प्रतीति किसको होगी ? कि ज्ञानस्वभावी आत्माकी दृष्टि जिसे संप्राप्त हो उसको ही वैसी प्रतीति आती है और तीनकाल - तीनलोकको जाननेवाले केवलज्ञानका जिसके भीतरमें स्वीकार आया उसके लिये भगवानने भव देखे ही नहीं।' अहा ! दीक्षा लिये अभी दो ही साल हुए है, तथापि इनके अंतरंगमेंसे कैसी पुरुषार्थप्रेरक बातें आ रही हैं ! कोई कभी पुरुषार्थ हीनताकी बातें करता तो उन्हें सुहाता नहीं

था।

ऐसे-ऐसे अनेक प्रकारसे पूर्व संस्कार बाहरमें झलकते रहे और भीतरमें सत्यकी खोज चालू रही। संप्रदायके शास्त्रमें जिनप्रतिमा संबंधित विपरीत निरूपण, सैद्धांतिक विपरीतता इत्यादिक मालूम होने पर संप्रदाय परसे विश्वास उठ गया। एकबार इनके गुरु हीराचंदजी महाराजने कहा कि, `कानजी तुम सभामें पढ़ो' तब कहा कि `महाराजा ! मैं प्रवचन देने नहीं आया, परंतु मैं तो अपने आत्माका हित करने आया हूँ।' फिर भी कभी-कभार नहीं चाहते हुए भी जाहिरमें प्रवचन देना पड़ता था। अंतरंगमें बार-बार पुकार उठती कि, सत्यकी खोज मुझको ही करनी होगी। गाँव-गाँवमें विहार किया। विहारके वक्त भी क्रियाओंका कड़ा पालन करते थे जिसके कारण दिन-प्रतिदिन उनकी ख्याति और प्रसिद्धि वृद्धिगत् होती चली।

संवत १९७६, दामनगरमें चर्चा चल रही है कि, `मिथ्यादृष्टि हो तब तक ही मूर्तिपूजा होती है, समकित होनेके पश्चात् मूर्तिपूजा नहीं होती।' तब उन्होंने कहा `समकितीको ही सच्ची मूर्तिपूजा होती है, मिथ्यादृष्टिको नहीं होती। क्योंकि मूर्ति है वह स्थापना है, स्थापना है सो निक्षेपका भेद है और निक्षेप उसीको लागू होता है कि जिसको नय संप्राप्त हो। और नय सम्यक् श्रुतज्ञानीको ही होता है, मिथ्यादृष्टिको नहीं, अतः सच्ची मूर्तिपूजा सम्यक्दृष्टिको ही होती है।

ऐसी ही एक दूसरी चर्चामें किसीने कहा कि, `विकार होनेमें कर्मके ४९% और जीवके पुरुषार्थके ५१% मान्य रखो।' तब स्वयंने कहा, `नहीं विकार होनेमें कर्मका एक प्रतिशत भी कारण नहीं, सौ के सौ प्रतिशत जीवनका कारण जीवमें है औ र सौ के सौ प्रतिशत कर्मका कारण कर्ममें है। अहो ! कैसे अद्भुत सिद्धांत भीतरमें स्फुरित हो रहे हैं।'

संवत १९७७, वांकानेरमें स्थिरताके दौरान एक अद्‌भुत प्रसंग बना। ॐकार ध्वनि सुनाई पड़ी और स्वप्नमें बहुत लंबी काया और ज़रीयुक्त कपड़े पहना हुआ राजकुमार दिखाई पड़ा। कभी तो 'मैं तीर्थंकर हूँ' ऐसा भी आ जाता, उसवक्त स्वयं आश्चर्यमें खो जाते परंतु बात समझ नहीं आती थी।

जिस सत्यको स्वयं ढूँढ़ रहे हैं वह मिल नहीं रहा है और मनमें उद्‌भवित असमाधान व शंकाओंका निराकरण नहीं हो रहा है, जिसके कारण कहीं भी चैन नहीं ! परंतु कहावत है कि जहाँ चाह है वहाँ राह है और कुदरत भी भावनाके साथ बंधी हुई है इस सिद्धांत अनुसार वह मंगल घड़ी आ चुकी ! संवत १९७८ के फाल्गुन मासमें दामनगर गाँव, वहाँके दामोदर शेठने उनके पास आकर श्री समयसार शास्त्र दिया, कि जिसमें रहे मार्गकी सुप्रसिद्धिका सौभाग्य इनकी ललाट पर ही लिखा था। इसतरह भरतक्षेत्रके समर्थ आचार्य

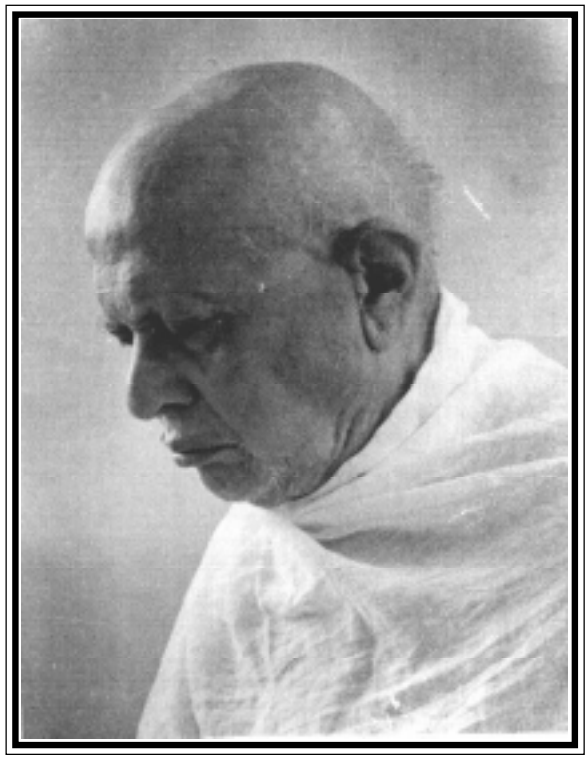

कुंदकुंदाचार्य विरचित ग्रंथाधिराज समयसार हाथ लग गया। शास्त्रको देखते ही हृदयोद्‌गार निकल पड़े `शेठ ! ये तो अशरीरी बननेका शास्त्र है।' अहो ! कैसी पूर्णताकी भनक आयी ! अहो ! जिनकी स्वयंको उत्कंठा थी, जिसके लिये दिन-रात खोज चलती थी, वह हाथ लग जानेसे अंतरमें आनंदको सीमा न रही। बस ! फिर तो समयसारके एक-एक वाक्यमें, एक-एक पंक्तिमें निहित अमृतका रसपान करने हेतु स्वयं सुबह आहार लेकर गाँवके बाहर एक गहरे खड्डेमें जाकर स्वाध्याय शुरू किया। ज्यों जौहरीकी नजर सच्चे मोती या माणिकको इसकी चमकसे परख लेता है और इसकी कीमत कर लेता है वैसे समयसारमें निहित रत्नोंकी कीमत इनको ज्ञाननेत्रमें अंकित होने लगे। समयसार पढ़ना शुरू किया कि तबसे पर्याय क्रमसर - क्रमबद्ध होती है ऐसा भीतरमेंसे आना शुरू हो गया।

संवत १९७८, विंछिया गाँवमें वैसाख वदी अष्टमीके दिन फिरसे एक बार भीतरमें ॐकार ध्वनि आया। पहले पूरा ॐ आया बादमें आधा ॐ आया। इस बार तो साथमें साड़े बारह क्रोड़ बादित्र भी सुनाई दिये। ये क्या संप्रदायमें तो ॐकारकी मान्यता है नहीं फिर ये क्या हो रहा है ? अंतरंगमें सब फेरफार होने लगा। तत्‌पश्चात् तो अनेक दिगम्बर शास्त्र हाथमें आये और प्रत्येक शास्त्रका गहन अभ्यास करते गये। संप्रदायमें ही जाहिर प्रवचनोंमें अनेक सैद्धांतिक रहस्योंका उद्‌घाटन होने लगा।

संवत १९८३में चर्चा चली। जिसमें एक शेठने ऐसा कहा कि `काललब्धि पकेगी जब मोक्ष होगा, पुरुषार्थ करनेकी कहाँ जरूरत है ?' उसवक्त खुदने मोक्ष मार्गप्रकाशकका आधार दिया, इसके बावजूद भी ज्यादा दलीले चली तब स्वयंने कहा, `शेठ ! वादविवाद मत करो। क्योंकि खोजी जीता है और वादी मरता है।'

संवत १९८५ में बोटादमें एकबार प्रवचनमें कहा, `जिस भावसे तीर्थंकरप्रकृत्तिका बंध होता है वह भी धर्म नहीं है। जिस भावसे बंधन हो वह धर्म नहीं हो सकता और मीठी भाषामें कहे तो वह अधर्म है।' अहो ! ऐसा कहनेका सामर्थ्य तीर्थंकरद्रव्यके अलावा किसका हो सकता है ? इसतरह अनेकानेक दिगम्बर जैन सिद्धांतोंका प्रतिपादन होना शुरू हुआ।

संवत १९९०, राजकोटमें समयसार पर जाहिर प्रवचन दौरान कहा, `**पूर्णताके लक्ष्यसे शुरूआत ही वास्तविक शुरूआत है।**' पूर्णता माने साध्यरूप मोक्षदशा। स्वयंके बहुत गहरे मंथनमेंसे निकला यह सूत्र मुमुक्षुजीवके लिये दिशाबोध समान है, इतना ही नहीं कहाँसे और कैसे शुरूआत करनी इसका सूचक है।

इसी अरसेमें उन्होंने, जाहिर किया कि `मैं संप्रदायमें रहनेवाला नहीं हूँ।' बस ! समाजमें खलभली मच गई! संप्रदायका कोहिनूर हीरा संप्रदाय छोड़नेकी बात कर रहा है ?! जिसे पूर्णता साध्य करनी है, जिसे पूर्ण वीतराग होना है, वह लोगोंका या संप्रदायके बंधनमें कहाँसे रह सकता है ? जो भाव अप्रतिबद्धतासे निरंतर विचरते हो, वे समाजके प्रतिबंधमें कहाँसे रहेंगे ? ये तो सिंहको बाड़में बाँधने जैसी बात हो गई ! इसतरह समाजमें बहुत सन्मान मिलता था फिर भी स्वयं निस्पृहतापूर्वक सत्यके खातिर संप्रदाय छोड़नेको तैयार हो गये। संप्रदाय छोड़नेके निर्णयसे अनेक प्रकारसे विरोध हुआ, लोगोंने धमकीयाँ दी, फिर भी स्वयं निःशंकतापूर्वक व निर्भयतापूर्वक संप्रदाय छोड़नेके निर्णय पर कायम रहे।

संवत १९९१ चैत्र सुदी १३, मंगलवार शासननायक महावीरस्वामी भगवानके जन्मकल्याणक दिन पर, जिसके समीपमें शेत्रुंजय जैसी पवित्र तीर्थभूमि है, जो शांत वातावरणमें सुशोभित है, और जिस सोनेके गढ़मेंसे इस अध्यात्मसूर्यकी कांति बहुत

फैलनेवाली है, ऐसे सोनगढ़ गाँवके `स्टार ऑफ इन्डिया' नामके मकानमें भगवान पार्श्वनाथके चित्रपट समक्ष परिवर्तन किया। संप्रदायका चिह्न मुहपत्तिका त्याग किया और स्वयंको सनातन दिगम्बर जैनधर्मके अव्रति श्रावकके रूपमें घोषित किया।

अंतरंग साधनाके साथ-साथ बाह्यमें जिनेन्द्रदर्शन, प्रवचन, तत्त्वचर्चा व भक्ति इत्यादिक कार्यक्रम नियमित होने लगे और दिन-प्रतिदिन प्रभावना बढ़ती चली। प्रथम वि.सं. १९९४के वैशाख वदी अष्टमीके दिन `स्वाध्याय मंदिर' का निर्माण हुआ। उसवक्त भी उन्होंने निस्पृही वृत्तिसे कह दिया `आप भले ही ये सब निर्माणकार्य करते हो, परंतु हम किसीसे बाध्य नहीं है, यदि हमारी वीतरागता बढ़ गई तो यहाँसे चले जायेंगे।' अहो ! धन्य है इनका वैराग्य व धन्य है इनकी निस्पृहता ! उसी दिन पूज्य बहिनश्री चंपाबहिनके पवित्र करकमलोंसे श्री समयसारजीकी स्थापना हुई। तत्पश्चात् संवत १९९७ में जिनमंदिरका निर्माण हुआ, और इसमें विदेहीनाथ श्री सीमंधर भगवानकी स्थापना करवाई और भगवानका विरह भूलाया। अध्यात्मसे सराबोर व स्वानुभवसे विभूषित वाणी एवं श्रुतलब्धि संपन्न निकलती दिव्यध्वनिसे लोग आकर्षित होकर सोनगढ़ आने लगे, जिससे समाजमें एक युग परिवर्तन आया। जो सत्य अंधेरेमें खोया हुआ था उसे स्वयंके अंतरंगमें उदित ज्ञानप्रकाश द्वारा खोजकर प्रसिद्ध किया। अनादिसे परिभ्रमण कर रहे व दुःख भोग रहे जीवको शाश्वत् सुख कैसे प्राप्त हो, इसका प्रकाशन शुरू हुआ। अचूक लक्ष्यवेधी रामबाण जैसी वाणी मिथ्यात्वके पटलको तोड़ने लगी। सोनगढ़में ही समवसरण, मानस्तंभजी, परमागममंदिरकी रचना हुई। परमागममंदिर अर्थात् भारतवर्षकी एक अद्वितीय रचना !! आचार्य श्री कुंदकुंददेवकी वाणीको अमर रखनेके लिये निर्मित हुए इस परमागममंदिरमें पौनेचार लाख अक्षरोंको टंकोत्किर्ण किया गया जिसके माध्यमसे पाँचों परमागम

सफेद संगमरमरमें टंकोत्किर्ण हुए। करीब २५००० के जनसमुदायके बीच मनाया गया परमागममंदिरका पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव गुरुदेवश्रीके तीर्थंकरद्रव्यकी प्रतीति कराता है। गाँव-गाँवसे लोग सोनगढ़ आकर बसने लगे और गुरुदेवश्रीकी देशनाका लाभ लेना शुरू हो गया। जिस तरह सूरजको छाबड़ीसे नहीं ढका जाता वैसे पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रभावना उदय सोलह कलाओंमें खिल उठा और क्रमशः इनके पवित्र करकमलोंसे ३३ पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएँ और ३३ वेदी प्रतिष्ठाएँ हुई।

प्रत्येक द्रव्यकी स्वतंत्रताका ढिंढ़ोरा पीटकर यह कहानसूर्य अपनी आभाको फैलाता हुआ जिनमार्गकी प्रभावनामें अग्रेसर होता जा रहा है। गाँव-गाँवमें जिनमंदिरोंकी स्थापना, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, लाखोंकी तादातमें शास्त्रोंका प्रकाशन, हजारों भक्तोंके साथ तीर्थयात्रा इत्यादि इनके भावि तीर्थंकरपदके सूचक हैं। जिस गाँवमें या शहरमें

उनके पवित्र चरणारविंदका स्पर्श होता है वहाँ लोग उमड़ पड़ते हैं। भोपालमें उनके दर्शन हेतु व वाणी सुननेके लिये ४०,००० लोगोंकी भीड़ हुई। बंबई जैसी महामोहमयी नगरीमें उनकी पवित्र देशनाका लाभ लेनेके लिये १० से १५ हज़ार लोग एकत्रित हो जाते। धवल जैसे महासिद्धांत शास्त्र एवं अन्य परमागमों पर जिनके जाहिर प्रवचन हुए हैं। ग्रंथाधिराज समयसारजी पर तो जाहिरमें १९ बार प्रवचन हुए हैं। समुद्रके मध्यबिंदुसे उत्पन्न हुए बाढ़ जैसे आकाशको छूनेकी कोशिष करती है, परंतु उससे वैसा हो नहीं सकता, परंतु यहाँ तो पूज्य गुरुदेवश्रीके श्रुतज्ञानसमुद्रमेंसे उद्‌भवित यह बाढ़ चारों दिशामें अमृतकी लहर उड़ाती हुई गगनको छूने लगी !! अंतरंगमें उछल रही सुख-शांतिकी लहरें बाहरमें सुननेवालोंको भी शांति दे रही है और ये सुख-शांतिकी लहरें पवित्र होकर धन्यताका अनुभव करने लगी।

संवत २०१३में भक्तोंके विशाल संघ समेत सम्मेदशिखर, राजगृही, पावापुरी, चंपापुरी, मंदागिरी इत्यादि तीर्थोंकी यात्रा की। गाँव-गाँवमें स्वागत करनेके लिये आये हुए लोग अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्रीको आश्चर्यपूर्ण नेत्रोंसे देखते रहते !! ये हैं कौन ?! क्या ये कोई तीर्थंकर तो नहीं ? देहका भव्य देदार, अध्यात्मरससे भरी हुई शांत मुखमुद्रा, नेत्रोंमें देदीप्यमान पवित्रता और भीतरी मिथ्यात्वका नाश करनेवाली वाणी - इन सब तीनोंको देखकर लोगोंके हृदय झुम उठते।

संवत २०१५ व २०२० में दक्षिणमें श्रवणबेलगोला, मुडबिद्रि एवं स्वयंके उपकारी तारणहार कुंदकुंदाचार्यदेवकी तपोभूमि पोन्नूरगिरि व समाधिस्थल कुंदाद्रिकी यात्रा की। इसके अलावा हजारों भक्तगण सहित गीरनारजी, शत्रुंजय, तारंगा, पावागढ़ आदि सिद्धक्षेत्रोंकी व अन्य तीर्थक्षेत्रोंकी यात्रा की। सम्यक्‌ज्ञानके साथ भक्तिका समन्वय

हुआ। तीर्थंकर कभी अकेले मोक्ष नहीं जाते इस बातकी प्रतीति यहाँ होती है।

पूज्य गुरुदेवश्रीके भावश्रुतसमुद्रमेंसे प्रत्येक द्रव्यकी स्वतंत्रता, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, सम्यक्दर्शन, स्वानुभव इत्यादिक अनेक रत्नोंकी वृष्टि हुई। जिसे झेलकर प्रशममूर्ति पूज्य भगवती माता चंपाबहिन व पूज्य निहालचंद्रजी सोगानीजीने सम्यक्रूपी महान निधिको धारण करके श्रीगुरुकी गरिमाको वृद्धिगत किया। अंतर्बाह्य प्रभावनाके इतिहासमें सोनेमें सुहागा मिलने जैसा कार्य हुआ। पूज्य गुरुदेवश्रीकी शांतसुधारसमयी वाणीको अंतरमें ग्रहण करके अनादि अज्ञान अंधकारका छेद कर डाला और सम्यक्त्वरूपी सूर्यका प्रकाश फैलाकर श्रीगुरुकी यथार्थ व सही प्रभावना की। पूज्य गुरुदेवश्रीके स्वर्णमयी इतिहासमें उदित हुए ये दो महान सितारे कहानरूपी सूर्यके प्रकाशको शाश्वत फैलाते ही रहेंगे।

जैसे एक हीरेके अनेक पहलू होते हैं वैसे पूज्य गुरुदेवश्रीरूपी कोहिनूर हीरा स्वयंके अनेक अलौकिक गुणोंसे अलंकृत होकर इस भरतभूमि पर चमक रहा है। सदाय झलकती आत्मस्वरूपकी महिमासे, स्वानुभवसे भीगा हुआ हृदय, कोमलता, मध्यस्थता, न्याय अविरुद्धता, भावना व भक्तिसे भीगा हुआ अंतरपट, निर्मानता, विशालता, निस्पृहता, निडरता, निःशंकता इत्यादिक अनेक गुणोंसे सुशोभित पूज्य गुरुदेवश्रीकी आभा सारे भारतवर्षमें फैली हुई है और वृद्धिगत् होती ही रहेगी।

श्रीमद् राजचंद्रजीको वर्तमानकालमें प्रसिद्ध करके उनकी अक्षर वाणीका यथार्थ मर्म समझानेका अनूठा कार्य पूज्य गुरुदेवश्रीकी यशगाथामें कलगी समान है।

विरोधियोंके द्वारा चाहे कितना भी विरोध हुआ फिर भी उनके

प्रति कितना कोमल संबोधन, `**भगवान ! हम तो किसीकी पर्यायको देखते ही नहीं, फिर भी हमसे देखनेमें आ गयी हो तो प्रभु हमें माफ करना** !' ये उनके क्षमाभावको, निष्कारण करुणाशीलताको व कोमलताको प्रदर्शित करते हैं। चाहे कितना भी श्रीमंत या पदाधिकारी हो, इनके प्रति हितार्थ कहे गये कठोर वचनमें भी उनकी करुणा, निस्पृहताके दर्शन होते हैं।

इसतरह अनेकानेक सद्गुणोंसे सुशोभित पूज्य गुरुदेवश्रीकी प्रभावना भारतमें व विदेशमें भी फैल रही है। लाखोंकी संख्यामें शास्त्र छप रहे हैं। जिस क्रियाकांडमें धर्म माना जाता था वहाँसे लोगोंको छुड़ाकर सत्य पंथ पर ले आये। लोगोंकी रुचि स्वाध्यायके प्रति जागृत की। नायरोबी जैसे अनार्यक्षेत्रमें भी जिनमंदिरकी स्थापना व लंडन आदि शहरोंमें स्वाध्यायकी प्रवृत्ति उनके अद्वितीय प्रभावना योग व तीर्थंकर योगको सूचित करती है। चारों दिशाओंमें जिन धर्मकी प्रभावनाका ध्वज लहराते-लहराते आत्मसाधना करते रहे।

रोज प्रातः ४ बजे उठकर निज ज्ञायकस्वरूपके ध्यानमें आरूढ़ होकर आनंदामृतका आस्वादपूर्वक दिन शुरू होता। अंतर्मुखताके प्रचंड पुरुषार्थ द्वारा स्वयंके ध्येयके समीप जाना उनका नित्यक्रम था। वीतरागी परमात्माओंके स्मरणपूर्वक समयसारकी १ से १६ गाथाओंका स्वाध्याय करना, समयसारजीमें विवरीत ४७ शक्तिओंका स्मरण करते-करते निज स्वरूपमहिमाको दिन-प्रतिदिन वृद्धिगत् करते गये। प्रवचनसारजीके ४७ नय द्वारा आत्मसाधनाको साधते चले। साथ ही साथ अलिंगग्रहणके बीस बोल, अव्यक्तके छः बोल व श्रीमद् राजचंद्रजी लिखीत `स्वद्रव्य अन्य द्रव्य भिन्न-भिन्न देखो' इत्यादि १० बोलका भी स्वाध्याय चलता। इतना ही नहीं पुराणपुरुष ऐसे २४ तीर्थंकरोंके नाम स्मरणके साथ-साथ स्वयं बाल ब्रह्मचारी होनेसे पाँच बाल ब्रह्मचारी तीर्थंकरोंका भी स्मरण करते हैं। इसतरह यह

अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेवश्रीका ज्ञान-ध्यानमय जीवन निस्पृही साधकके जीवनका दर्शन कराता है।

ऐसे सत्पुरुष इस धरातल पर शाश्वत विद्यमान रहे ऐसी सर्व मुमुक्षुओंकी भावना होने पर भी ये जिन-शासनका चमकता सितारा अपने प्यारे विदेहीनाथको मिलनेके लिये जैसे तैयार हो गया। देहकी स्थितिमें फेरफार होने पर भी उन्होंने कहा, यहाँ हमें तो कुछ मालूम तक नहीं होता है।' अहो ! धन्य है इस देहातीत दशाको! देह और आत्माका जैसे ही भिन्न अनुभव हुआ कि, चाहे जैसी परिस्थितिमें भी पुरुषार्थवंत आत्माओंको देहादि भिन्नरूप ही अनुभवमें आता है। इस देहको छोड़कर जानेकी घड़ी आ पहूँची। सारे जीवनकी अखंड साधनाकी फलश्रुतिरूप उग्र पुरुषार्थका प्रवाह शुरू हुआ। निज परमात्मस्वरूपमें लीनता हेतु उपयोगको हर जगहसे समेटकर स्वयं भीतरी पुरुषार्थमें जुड़ गये। स्वसंवेदनका आविर्भाव हुआ। निर्विकल्प ज्ञानवेदन आनंद सहित प्रगट हुआ और परिणति परितृप्तताका अनुभव करने लगी। अनंत गुणोंकी परिणति अपने चैतन्य स्वरूपमें लीन होकर रसास्वादन करने लगी। बाहरमें मुमुक्षुओं अनंत उपकारी श्रीगुरुकी असहनीय विदाई निःसहाय होकर देखते रहे और ये चमकता सितारा संवत २०३७के कार्तिक वदी ७, शुक्रवारके दिन अस्तताको प्राप्त हुआ।

श्रीगुरुने विदाई ली, विदेहीनाथसे भेट करनेके लिये विदेहीदशामें आरूढ़ होकर निर्विकल्प आनंदरूपी तोहफा लेकर प्रयाण किया। भरतक्षेत्रमें भक्तगण अनाथ हो गया। कभी पूर्ति न हो सके ऐसी कमी आ पड़ी। स्वाध्याय मंदिर, परमागममंदिर व मुमुक्षुओंके मन मंदिर सब सुना पड़ गया। रह गई सिर्फ `भगवान आत्माकी गूँजार ! रह गई सिर्फ स्मृतियाँ ! रह गया विरह और रह गये मुमुक्षुओंके सजल नेत्रोंमें रहे निरूतर प्रश्न !! अब कौन कहेगा कि `तू परमात्मा

हो' ? कौन अब 'भगवान आत्मा कहकर बुलायेगा ? क्या ये हकीकत है या स्वप्न ? क्या ऐसा हो सकता है ?'

ये सीमंधरलघुनंदन सबको अनाथ छोड़कर चले गये। ये तो विदेहवासी जन्म-मरणसे मुक्त होनेके लिये निकले हुए महापुरुष ! उन्हें ऐसी जगह रहेना कहाँसे पुसाता ? क्या अब वे 'भगवान आत्मा' कहकर प्रेमसभर, मीठा, पुरुषार्थप्रेरक संबोधन नहीं करेंगे ? ऐसा प्रश्न मुमुक्षुओंके हृदयमें सताने लगा। कालकी गति न्यारी है। लौकिक जनोंकी मृत्यु तो जन्म-मरणकी श्रृंखला तोड़े बिना ही हो जाती है, जब कि ये तो मृत्यु-महोत्सव मनानेवाले अलौकिक पुरुष थे जिनकी मृत्युकी कल्पना भी कैसे की जाये ? अंतरंगमें जिन्होंने विदेहीदशा प्रगट की उन्हें अब नई देह मिले तो भी क्या ? वह तो ज्ञानका ज्ञेय रह जाता है। जैसे इस कालमें इस क्षेत्रमें तीर्थंकरका विरह है, परंतु आचार्यों द्वारा चुने गये परमागमोंकी उपलब्धि द्वारा तीर्थंकरकी वाणीका विरह नहीं है। वैसे ही मंगलमय कहानगुरुदेवकी अभी प्रत्यक्ष मौजूदगी भले ही न हो परंतु उनकी वाणी उन्हींकी आवाजमें संग्रहित है। इसके अलावा इनका प्रवचन साहित्य भी काफी मात्रामें उपलब्ध है। जिसके माध्यमसे कल्याणमूर्ति गुरुदेवश्री द्वारा उदित हुआ सनातन वीतराग जैनधर्म इस युगके अंत तक टिकेगा और भव्य जीवोंको सुखकी राह दिखाता रहेगा।

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिनका आध्यात्मिक जीवन परिचय

सौराष्ट्रकी भूमि अनेक धर्मात्माओंके पावन चरणोंसे पवित्र रही है। ऐसे इस सौराष्ट्रके वढ़वाण नामक छोटे गाँवमें वि. सं. १९७०, श्रावण वद दूज, शुक्रवारके दिन माहालाक्ष्मीके मन्दिरके पास पीपलवाले घरमें, एक शांत मुखमुद्रा धारी, धीर-गंभीर आत्माका आगमन हुआ और यह भूमि मानो फिरसे एकबार रुम-झुम करती हुई महक उठी। ज्योतिष आया है और कहता है कि ``यह कोई असाधारण आत्मा है, महाविदेहसे पधारे हैं और भविष्यमें होनेवाले गणधरदेव हैं।'' ऐसे हमारे परम प्रिय पू. बहिनश्री चंपाबहिनका अंतरंग आध्यात्मिक

परिचय यहाँ प्रस्तुत है।

⌘ बचपन :

पू. बहिनश्री बचपनसे ही प्रकृतिगत सौम्य, नरम, सौजन्यपूर्ण, शरमीले, वैरागी, मितभाषी और मिष्टभाषी थे। साढ़े तीन वर्षकी उम्रमें उनके मातुश्रीका स्वर्गवास हो गया। दस-ग्यारह वर्ष करांचीमें बड़ी बहन (समरत बहन) के यहाँ रहे। बुद्धिशाली होनेसे पाठशालाकी पढ़ाईमें उनका प्राय: प्रथम नंबर रहता था। यह पढ़ाई भी उन्होंने करांचीमें ही की। उनके स्वभावकी नर्मीके दर्शन नीचे दिये हुए प्रसंगमें हो रहे हैं।

वे रहते थे उस चालमें नीचे एक साथ बहुतसे नल थे। जब वे पानी भरने जाते थे तो वे एक ओर खड़े रहते थे। उनकी बारी आती थी तब भी खुद भीड़के अन्दर जाकर पानी नहीं भर सकते थे, फिर दूसरी बहनोंके कहने पर वे पानी भरते थे। फिर भी ऐसे नरम स्वभावी पू. बहिनश्री, स्वभावसे उतने ही मक्कम भी थे। ऐसे-ऐसे अनेक सद्‌गुण उनमें प्रगट थे। बहिनश्रीको बचपनसे ही सद्‌गुणीजनके प्रति प्रेम था। यह गुणग्राहीपना उनमें बचपनसे ही था। वे अन्य नैतिक पुस्तकें, सदाचरणकी पुस्तकें भी पढ़ते थे। वे घरमें रहकर धार्मिक अभ्यास करते थे। सामायिक, प्रतिक्रमण इत्यादि एवं त्याग, वैराग्यकी क्रियाएं भी करते थे।

यह सबकुछ होनेके बावजूद भी पूर्व संस्कारवशात् उन्हें अन्तरंगमें आत्माके प्रति रुचि रहा करती थी। अव्यक्त संस्कार मानो जैसे कि अन्दरसे जागृत होनेके लिए प्रेरीत नहीं हो रहे हो वैसे !! बाहरकी क्रियाओंमें उन्हें कहीं पर भी रस नहीं आता था।

बचपनसे ही पूर्व आराधनावश वैराग्यके कारण दीक्षा लेनेके मनोरथका सेवन किया था। परन्तु शरमीले और नरम प्रकृत्तिके कारण किसीसे भी कह नहीं पाये और दीक्षा लेनेकी भावना साकार

नहीं हो पायी। परन्तु ये तो अन्तर आत्माके साधक, मोक्ष-पंथके पथिक !! उनका आत्मा संसारमें कब तक रह सकता ? सत्संगके बिना असत्संगके घेरेमें कब तक रह सकता? करांचीमें सत्संगके अभावके कारण अन्दरसे आत्मा मानो कि सत्संगकी खोजमें रहा करता था। कहाँ है सत्संग ? कहाँ है ऐसे सत्पुरुष? उनके हृदयमें कहीं भी चैन नहीं था। बाहरमें सत्संगका अभाव और अन्दरमें सत्संगकी प्रबल भावना - ऐसी परिस्थितिमें आत्म-कल्याण नहीं हो पायेगा, ऐसा बारंबार लगता था और मनुष्य भवके बहुत साल बीत गये, ऐसा बारंबार लगता था।

⌘ प्रत्यक्ष योग :

वीर संवत १९८५ में वढ़वाणमें अध्यात्मयुगप्रवर्तक पू. गुरुदेवश्रीके प्रवचन श्रवणका सर्व प्रथम योग बना। तत्त्वज्ञानसे भरपूर पुरुषार्थ प्रेरक प्रवचनोंको सुनकर, इस दिव्य आत्माके संस्कार मानो फिर से जागृत होने लगे। बस ! फिर तो और क्या चाहिए? पानी जैसे चट्टानको चिरते हुए आगे निकल जाता है, वैसे ही उनके अन्तरमें दर्शनमोहका छेद होने लगा और ज्ञानमें निर्मलता आने लगी। दिन-प्रतिदिन उनकी उदासीनता बढ़ने लगी। पू. गुरुदेवश्रीके प्रवचनोंको एकाग्र चित्तसे सुनकर वे खुदके हस्ताक्षरोंमें लिख लेते थे। १९८५ में यह प्रथम प्रत्यक्ष सत्पुरुषको सुननेका योग होनेके पश्चात् करांचीमें रहना हुआ। परन्तु उनका आत्मा तो प्रभु चरणकी झंखनामें ही रहता था जिसके कारण अन्ततः एक दिन परिस्थिति असहनीय हुई तब वे करांची छोड़कर, खुदके मूल वतन वढ़वाण आ गये और उनकी भावनाका विजय हुआ। अनंत तीर्थंकरोंकी यह वाणी निष्फल कैसे जाये? जा ही नहीं सकती।

⌘ परिभ्रमणकी चिंतना, वेदना व झूरणा :

अनादि कालसे चल रहे इस पर्यटनका अंत कैसे हो ? आत्माका

अस्तित्व, मोक्ष, मोक्षका उपाय इत्यादि विषयोंमें उनका गहन और गहरा मन्थन चलता रहता था, उन्हींके शब्दोंमें उनके पत्र द्वारा दृष्टव्य है :

``....ऐसी भावना हो रही है कि, यह जन्म-मरण कैसे टले, पुरुषार्थ कैसे उठे ? आत्म स्वरूपकी प्राप्ति कैसे हो ? ऐसी भावना रहा करती है।'' (करांची)

``ऐसे अमूल्य मनुष्य देहकी एक पल भी व्यर्थ नहीं जाने देना, ऐसी मेरी इच्छा है।''

``अब तो पू. कानजी महाराज जैसे गुरु मिले; अब तो भवका अभाव कैसे हो ? यही भावना होनेसे करांचीमें रहना मुश्किल हो पड़ा है।'' (**वढ़वाण - वीर. सं. १९८७**)

उपरोक्त लेखनीसे सहज समझमें आता है कि उनकी जन्म-मरणसे मुक्त होनेकी प्रबल भावनाके वशात् उनका हृदय कितना व्यथित होकर झुर उठता था, जिसे उनके ही शब्दोंमें देखें। एक पत्रमें वे लिखते हैं,

``भाभी, आजकल करते-करते बहुत दिन बित गये। अरे..! अनन्त काल बित गया, लेकिन सच्चा सुख नहीं मिला। क्या यह कम खेद दायक है ? यह जगत क्या ? इस जगतकी रचना क्या ? आत्मा क्या ? पुनर्जन्म क्या ? यह सब अनेक प्रकारके विकल्प क्या ? परवस्तु क्या ? इन सभीका विचार करने पर अकुलाहट हो आती है और ज़िन्दगी नीरस लगती है। हृदय रो रहा है। लेकिन यह रोना झूठा है। अनन्त कालसे अनन्त वेदना सही, फिर भी कंटाला क्यों नहीं आया ? कपकपी क्यों नहीं हुयी ? सत्यकी उत्कंठा क्यों नहीं जग रही है ? संसारमें एकान्त दुःख क्यों नहीं लग रहा है ?''

(**वीर सं. १९८७-८८**)

ऐसे-ऐसे अनेक प्रश्नोंसे उनका अन्तरंग घिरा हुआ रहता था और उस कारणसे उनकी वेदना व झूरणाकी असह्य परिस्थिति हो जाती थी। उनका हृदय निज प्रभुके वियोगमें कैसा आक्रंद करता था, यह निम्न वचनोंसे भासित हो सकता है :

``**आहा जीव ! आहा प्रभु ! कभी भी तुझे प्रभुके वियोगका दु:ख लगा है ? अन्दरसे दर्शनके लिये हृदय रोया है ? प्रभुका वियोग तुझे खला है ? अरेरे....! अभी तो इनमेंसे कुछ भी नहीं है तो ऐसेमें प्रभु कहाँसे मिलेंगे ? क्या यूँ ही अनन्त काल बित जायेगा ?**'' (**वीर संवत १९८७-८८**)

देखिये ! प्रभुके वियोगमें हृदय तड़प रहा है। ऐसा होने पर भी लिखते हैं कि ``**अभी तो इनमें से कुछ भी नहीं है**''

⌘ उदासीनता :

उपरोक्त तड़पनके कारण उनका चित्त कहीं पर भी स्थिर नहीं रह पाता था। उनकी उदासीनता वृद्धिगत होती गयी। घरमें काम-काज आदि करते हुए भी उनकी अन्तरंग उदासीनताके यहाँ दर्शन करने जैसा है:

``**यहाँ आत्म हित नहीं हो रहा है जिसके कारण उदासीनता वर्तती है। कभी-कभी**

तो आत्मा ऐसे विचारों में चढ़ जाता है कि कोई बुलाएं तब भी मेरा ध्यान नहीं होता है। काम करना भी भूल जाती हूँ।''

आगे लिखते हैं : ``**आत्माके विचारमें किसीसे भी बोलना सुहाता नहीं है।**'' (**वीर सं. १९८६ - करांची**)

(**जेठ सुद- १४**)

अहो ! धन्य है उनकी उदासीनता !!

⌘ पूर्णताका लक्ष :

जन्म-मरण कैसे टले ? ऐसी भावना तो शुरूसे ही थी और किसी भी कीमत पर मुक्त हो जाना है, ऐसा उन्हें शुरूसे ही रहा करता था और उक्त वेदना एवं उदासीनताके कारण वे एक पत्रमें लिखते हैं कि : ``**अब तो वहाँ आनेके बाद मोक्ष, मोक्ष और मोक्षकी ओर ही लक्ष रखना है।**'' (**वीर सं. १९८६, जेठ सुद - १४**)

कैसा अदभुत संवेग प्रगट हुआ है !! परिणाम जैसे मानो अभी ही मोक्ष प्राप्त करनेके लिये छटपटा रहे हो। बादलोंको देखकर जैसे सूर्य वापिस नहीं लौट जाता बल्कि घनघोर बादलोंको चिरते हुए प्रकाश करता है, वैसे ही उनके यह संवेगयुक्त परिणाम, अनादि अज्ञान रूपी अंधकारको मिटानेके लिये कृतनिश्चयी हुए हैं। पूर्ण निर्दोष होनेकी भावना उनके निम्नलिखित वचनसे स्पष्ट हो सकेगी :

``**यहाँ पर मेरी दशा ऐसी है कि एक बार मुझे निवृत्ति लेनी है। ढूँढ़-ढूँढ़ कर दोषको निकालने हैं, मोक्षका बीज प्राप्त करना है।**'' (**संवत - १९८७**)

परिणाम शीघ्रतासे आगे बढ़नेके लिये दौड़ रहे हैं। रोका न जा सके, ऐसा संवेग प्रगट हुआ है; ``**रणे चड्या रजपूत छूपे नहीं।**'' (**लड़ता हुआ रजपूत छिपाये नहीं छिपता**) इस कहावतके

अनुसार उनके आत्माने दर्शनमोहके सामने खुल्ले आम जेहाद जगाकर मोक्ष महलका मंगल शिलान्यास किया।

⌘ परम सत्संग की भावना तथा गुरु भक्ति :

पू. गुरुदेवश्रीका प्रत्यक्षयोग प्राप्त होनेके बाद भी करांचीमें रहना पड़ता था। जिससे उनका चित्त सत्संगके वियोगमें उदास रहने लगा। सत्संगमें रहनेकी उनकी उत्कृष्ट भावना यहाँ दृष्टव्य है :

"**यहाँ गुरुके दर्शन नहीं, उनकी वाणी नहीं, सत्संग नहीं, जिससे यहाँ रहना मुश्किल हो पड़ा है**"

"**जन्म-मरणका अंत किस उपायसे हो, इस भावनाके वश यहाँ (करांचीमें) रहना ज़रा भी पोसाता नहीं है**"

आगे दूसरे पत्रमें लिखते हैं :

"**अब तो पू. कानजी महाराज जैसे गुरु मिले, अब तो भवका अभाव कैसे हो ? यही भावना होनेसे करांचीमें रहना मुश्किल हो पड़ा है।**" (वढ़वाण वीर सं. १९८७)

पू. गुरुदेवश्रीके प्रत्यक्ष प्रवचन श्रवणके बाद उनका आत्मा भाव विभोर हो उठा है। और वे लिखते हैं :

"**पू. कानजीमहाराजका व्याख्यान सुननेके बाद हृदयमें ऐसे अच्छे भाव आते थे कि उसका वर्णन क्या करुँ ? ओ प्रभु ! मुझे सदा पू. कानजीमहाराजका तथा धर्मीका सत्संग प्राप्त रहो, ऐसा मैं चाहती हूँ**" भक्तका स्थान तो गुरुके चरणोंमें ही हो न ! मोक्षदाता मूर्तिमान मोक्षस्वरूप पू. गुरुदेवश्री के प्रति उनकी भक्ति निशदिन वृद्धिगत हो रही है। उनके रोम-रोममें पू. गुरुदेवश्री बस गए हैं और हृदयके तार-तार उन्हींका रटन एवं भजन कर रहे हैं। उनकी उक्त प्रकारकी परिणतिके दर्शन निम्न वचनोंसे करने योग्य है :

"**पोरबंदरमें मेरे दिन पू. कानजीमहाराजके ही रटनमें जाते**

थे, विचार भी उन्हींका, स्वप्न भी उन्हींका, पोरबंदरसे आए उस रातको भी पू. कानजीमहाराज स्वप्नमें आये थे" (**वांकानेर - सं. १९८७**)

अहो ! उत्तम मुमुक्षुतामें प्रगट हुए उपरोक्त गुण - भक्ति और नमस्कार करने योग्य नहीं है क्या? अवश्य करने योग्य है। क्योंकि समकितके बीजका बीज है। इसलिए अवश्य वंदनीय है।

⌘ अपक्षपातरूपसे दोषका अवलोकन :

जिसे सर्व दोषसे एवं सर्व दु:खसे मुक्त होना ही है, उसका अपक्षपातरूपसे स्वयंके दोषका अवलोकन सहज चलता है। दोषके साथ दु:ख जुड़ा हुआ है और निर्दोषताके साथ सुख जुड़ा हुआ है। तो फिर स्वयंके ऐसे निज प्रयोजनकी सिद्धिके लिए खुदके दोषका अवलोकन अपक्षपातरूपसे कैसे होता है ? उसमें कैसी सरलता होती है ? कैसी मध्यस्थता होती है ? यह उनके निम्न लिखित वाक्यामृतसे दृश्यमान हो सकता है :

``**अत्र प्रमादावस्था है। इसके निमित्तोंके मिलने पर, शिथिलता होनेसे, सत्य-असत्यका निर्णय हो नहीं पाता**''

``**ज्ञानी पुरुषके साथ मेरी दशाका मिलान करने पर `मैं पामर पशु हूँ' ऐसा लगता है। कई बार आत्मा प्रमाद सहित हो जाता है**'' (**सं. १९८७**)

आगे लिखते हैं ``**थोड़े महिने पहले मेरी दशा अभी जो है, उससे बेहतर थी। आत्माको पुरुषार्थ करना अमुक मात्रामें सूझता था, कषायोंको जीतता था। अभी प्रमाद है। कई बार सत्य-असत्यके मंथनके विकल्पोमें, यह जीव फ़ँस जाता है। ऐसी क्षण-क्षणकी स्थिति है।**'' (**सं. १९८७**)

देखिये ! स्वयंके परिणामोका कैसा सूक्ष्म अवलोकन चल रहा है। जिसको आत्महितका महान विवेक प्रगट हुआ हो, उनको खुदके

परिणमनमें हित-अहितका सूक्ष्म अवलोकन सहज-सहज चलने लगता है, वह उपरोक्त वचनोंसे समझमें आ सकता है।

``अभी मेरेमें तो कुछ भी नहीं है। अभी संसार प्रिय लगता है, वरना यह स्थिति नहीं होती। भाषामें बोलना, पत्रमें लिखना, यह सब व्यर्थकी बातें करने जैसा है''

(वि. सं. १९८७-८८)

इतने-इतने महान गुणों प्रगट होनेके बावजूद भी, पूर्णताका लक्ष होनेके कारण उपरोक्त वचन सहज ही परिणमन परसे लिखनेमें आ गए हैं।

⌘ अंतर खोज :

भवभ्रमणका अभाव करनेके ध्येयके साथ परिणमन कर रहे इस आत्माको अब किसीके साथ बोलना सुहाता नहीं है। असत्संग तो दूरसे ही छोड़ दिया है और अन्तरमें स्वरूपकी खोज चल रही है। ऐसा कैसा स्वरूप है कि जिसके आधारसे मेरी पूर्ण शुद्धिकी भावना पूर्णताको प्राप्त हो ? ऐसा स्वरूप कहाँ है ? कि जिसके आश्रयसे अनन्त काल तक परम सुखके घूँट पीते ही रहें ? ऐसा स्वरूप कहाँ है कि जिसके आधारसे इस ज़हर जैसे संसारका अंत आ जाए ? ऐसी असह्य छटपटाहट, झंखनाके परिणाम कहीं भी चैनसे बैठने नहीं देते। हृदय रो रहा है, कहाँ है वह सुख ? कहाँ है वह मेरा निज प्रभु ? ऐसेमें उनका आर्त हृदय पुकार उठता है कि :

``दूर कां प्रभु दोड तूँ, मारे रमत रमवी नथी;
आ नयन बंधन छोड़ तूँ, मारे रमत रमवी नथी.
हुँ तो सुधानो स्वादियो, चाल्यो सुधानी शोधमां;
त्यां झेरनो प्यालो मळ्यो, एवी रमत रमवी नथी.
नथी सहन करी शकतो प्रभु, तारा विरहनी वेदना;

हे देव ! तुझ दर्शन विना, मारे रमत रमवी नथी."

ऐसी अथाग वेदनासे कुदरत भी मानो जैसे रो पड़ती है और उनके अंतरमेंसे निर्मलताके स्रोत बहने शुरू हो जाते हैं।

अन्तरमेंसे परिणमित हुई भावनाके साथ कुदरत बन्धी हुई है और भावनाके फलमें तो चौदह ब्रह्मांडको भी शून्य होना पड़ता है। उनकी ऐसी प्रंचड भावनाके सामने कुदरतको भी झुकना पड़ता है। यथार्थ भावनाके साथ कुदरत बंधी हुई है।

⌘ स्वरूप निश्चय :

ज्ञानमें वृद्धिगत हुई निर्मलताके द्वारा ज्ञान अपनेमें ही अपनेमें स्वभावकी खोज करता है। ज्ञान अंशत: रागसे मुक्त होकर, स्वसन्मुख होकर सामान्य ज्ञान वेदनके आधारसे अनन्त गुणात्मक एकरूप स्वरूपका पता पा लेता है। अहो ! जिसके लिए हृदय रो रहा था, जिस सुखके लिए हृदय तरसता था, जिस निज प्रभुकी प्राप्तिके लिए हृदय पुकार करता था, उस प्रभुके आंगनमें जाकर उसकी झांखी हुई, स्पष्ट अनुभवांशसे लक्ष्य एवं प्रतीति हुई, जिससे चैतन्य वीर्यका धोध उमड़ पड़ा और पुरुषार्थ तीव्र वेगसे आगे बढ़कर स्वरूपानुभवके लिए उछाला मारने लगा। अनन्त कालसे जमी हुई मलिन परिणतिका स्थान, अनंत गुणात्मक चैतन्य प्रभुकी भजनारूप परिणतिने लिया। स्वयंके निज परमात्माके साथ सगाई हुई और परिणति निज परमेश्वरके साथ तन्मय होनेके लिए स्वरूपकी ओर दौड़ने लगी। ऐसा अनन्य भाव प्रगट हुआ कि, अब तो एक पल भी निज प्रभुसे दूर नहीं रहा जाएगा, दूर रहना ही असंभव है।

⌘ आत्म साक्षात्कार :

वांकानेर संवत १९८९ फागुन वद १० वींका दिन है। शामके करीब ३:३० का समय है। घरमें एकान्त है। पू. बहिनश्री घरके ऊपरके मजलेमें सामायिक करने बैठे हैं। निज स्वरूप रस घूँट

रहा है। पुरुषार्थ रोकने पर भी नहीं रुके, ऐसी परिस्थिति है। स्वस्वरूप लक्ष्यमें आते ही, ज्ञाताधाराकी वृद्धि होकर, स्वरूपका ध्यान लगा और उसमें एकाग्र होते ही उस स्वरूपमें तीव्रतासे वेगपूर्वक उपयोग अनात्मभाव / परभावसे भिन्न होकर अपने स्वस्वरूपमें स्थिर होकर, चैतन्य भगवान अपने उस स्वरूपका अनुभव करने लगे। अहा ! अनन्त कालसे छिपे हुए भगवान प्रगट हुए; उनका छिपा हुआ अनुपम अमृत स्वाद स्वरूपमें वेदनमें आया, अनुभवमें आया। अहो ! धन्य वह घड़ी !! धन्य वह नगरी !! धन्य वह कुल !! धन्य वह भूमि !!

अनुपम अमृत आस्वादनसे परिणति तृप्त हुई। देवानुप्रिय ऐसे इस मनुष्यभवको सार्थक कर लिया। देवलोकके देवोंने स्वर्गसे वंदन किये और ऐसे मनुष्यभवकी झंखना करने लगे और इस आत्माका मानो जैसे सत्कार करने लगे। आनन्दपूर्वककी स्वर लहरीयाँ गुंजने लगी :

``आज मंगल मंदिर द्वारा खुल्या, मंगल द्वार खुल्या रे;
स्वानुभूतिना स्वाद आज चाख्या, मंगल द्वार खुल्या रे ''

आत्मा अकर्ता हुआ। कर्तृत्व छूट गया और ज्ञाता हो गया। मानो जैसे समस्त विश्व के ऊपर तैरने लगा।

⌘ जातिस्मरण ज्ञान :

अप्रतिहत धारासे आगे बढ़ रही साधना और अंतर परिणति निज परमेश्वरके साथ खेल रही है। ऐसी अंतरंग आध्यात्मदशाके दौरान सं. १९९३, चैत्र वद अष्टमीके दिन, निज स्वरूपका ध्यान चल रहा है। सुबहके दस बजे हैं। आत्म स्थिरता बढ जानेसे सीमंधर भगवानका समवसरण दृश्यमान हो रहा है। श्रुत केवलियोंका समूह है। कुन्दकुन्दाचार्य देव वहाँ बिराजमान हैं और स्वयं (पू. बहिनश्री) वहाँ पुरुष पर्यायमें दिव्यध्वनिका अमृतपान कर रहे हैं।

निर्मल श्रुतज्ञानकी चलती हुई धाराके दौरान ऐसा स्मरण प्रगट हुआ। जैसे-जैसे साधना वृद्धिगत होती गयी, भव-भवका स्मरण आने लगा। उनके सातिशय ज्ञानने श्री सूर्यकीर्ति भगवानका मिलाप कराया और सारा हिन्दुस्तान झुम उठा। पूरा भारतवर्ष इस विदेहके मेहमानको मस्तक पर बिठाकर झुमने लगा और सहज ही गाने लगा :

``सीमंधर - गणधर संतना, तमे सत्संगी;
अम पामर तारण काज, पधार्या करुणांगी''

❀ अंतरंग आध्यात्मदशा :

मात्र १९ वर्षकी छोटी उम्रमें ऐसी अद्‌भुत साधना प्रगट हुई है। उनकी अंतरंग दशाका भी यहाँ विहंगावलोकन करके रसास्वादन करने योग्य है। एक पत्रमें लिखते हैं :

``अंतरमें ज्ञाताधारा - भेदज्ञानधारा चल रही है, विभावोंसे विरक्ति रहा करती है'' (**वि. सं. १९८९**)

पर्वतके ऊपर बिजली गिरनेके पश्चात जैसे पर्वतके दो भागको जोड़ नहीं सकते वैसे ही विभावोंसे और परसे भिन्न हो चुकी ज्ञाता धारा भिन्नरूपसे ही वर्तती रहती है।

अंतरंग दशा विशेष वर्धमान होती चली है। आगे वि. सं. १९९१, चैत्र सुद छठके दिन लिखे हुए पत्रमें लिखते हैं :

``स्वरूपके अलावा कार्मण वर्गणाके निमित्तसे प्रगट होने

वाले समस्त शुभाशुभ परभाव - सब बोझारूप एवं उपाधिरूप हैं। उनके प्रति कई बार तो सहज रूपसे विशेष उदासीनता आ जाती है, एवं उनके प्रति थकान लगकर, वैसी प्रवृत्ति और वैसी परिणतिसे भी थकान लगने पर चैतन्य प्रभु उससे विशेष उदासीन होकर स्वस्वरूपमें सहज रुपसे विशेष स्थित होता है।''

वि. सं. १९९३ के पोष महिनेमें लिखते हैं;

''**बाह्य संयोगोंकी अस्थिर परिणतिमें असर अमुक अंशमें स्थितिके प्रमाणमें होती है; ज्ञायककी प्रतीतिरूप भिन्न ज्ञायक परिणतिमें कोई असर नहीं है, होने योग्य नहीं है। स्थिर परिणतिमें अमुक अंशमें स्वरूप समाधि होने योग्य है, और वैसे ही है।**''

यहाँ अन्तर-बाह्य दोनों प्रकारकी परिणतिके दर्शन करने योग्य है। निज स्वरूपकी प्रतीतिरूप हुई ज्ञायक परिणति कैसी निश्चलतासे चल रही है !! वह अवगाहन करने योग्य है। धन्य है इस परिणति को ! धन्य है ऐसे पुरुषार्थको !

जो पूर्ण शुद्धिका ध्येय बाँधकर निकला हो उसे अधूरापन कैसे पोसाए ? वह धीमी धारसे अमृतका पान क्यों करेगा ? उनको तो अब अमृतधाराका विशेष पान करनेके लिए वन-जंगलका स्मरण आता है। ऐसे प्रशस्त योगमें भी रहना सुहाता नहीं है और मुनिदशाकी भी कैसी भावना हुई है, उसका भी यहाँ पर अवगाहन करने योग्य है। वे वि. सं. २००३की सालमें लिखते हैं कि :

''**अब तो विभावके सभी विकल्पोंसे छूटकर वीतराग पर्यायरूप परिणमन होगा, तभी धन्य होंगे। हजारों मुनियोंका समूह जिस कालमें विचरता होगा उस प्रसंगको धन्य है। वैसे कालमें मुनिपना लेकर क्षणमें अप्रमत्त, क्षणमें प्रमत्त ऐसी दशाको**

साध्य करके वीतराग पर्यायरूप परिणमन होगा तभी धन्य होंगे !!

अहो ! कैसी उनकी वीतरागताकी भावना ! कैसी उनकी मुनिपनेकी भावना !! नत मस्तक होनेके अलावा और क्या हो सकता है ?

पू. गुरुदेवश्रीने उनके बारेमें सत्य ही फरमाया है कि ``**सभी भाइयों उनके पैरके तलवे चाटे तो भी कम है, ऐसा तो यह द्रव्य है** !''

❀ गुरु भक्ति :

ऐसी बलवान अध्यात्म दशाके साथ गुरु - भक्तिकी सुसंगतताका प्रकार कैसा होता है यह भी दर्शनीय है। गुरु भक्ति कैसी होती है ? यह तो वही जानता है जिसका उसरूप परिणमन होता है !

``**हे गुरुदेव ! आपसे दूर रहनेका विरह सहन नहीं हो रहा है**'' (**वि.सं. १९९१, चैत्र सुद-६**)

``**चैतन्य स्वरूपकी वृद्धि करानेवाले, जीवनको सफल करानेवाले, परम उपकारी प्रिय गुरुदेवकी एकदम समीपता हो। अब तो विरह सहन नहीं होता है।**''

``**आत्म - आधार पूज्य गुरुदेवश्रीके स्वास्थ्यको बिलकुल भी कुछ न हो, एकदम अच्छा रहे - ऐसी झंखना रहा करती है।**'' (**सोनगढ़, वि. सं. १९९३, महा मास, रविवार**)

अहो ! पू. गुरुदेवश्रीकी विरह वेदनामें तड़पते हुए उनके हृदयसे बारंबार कैसे वाक्यामृत निकल रहे हैं !!

``**सोनगढ़के प्रति, उस पवित्र भूमिके प्रति बहुत महिमा आती है। अब तो विरह सहन नहीं होता है। पू. गुरुदेवश्री के विरहका काल शीघ्रतासे पूर्ण हो, ऐसी भावना है।**''

(**वांकानेर - वि. सं. १९९३**)

अहो ! गुरु भक्तिसे सराबोर हृदय !! बारंबार वंदन हो !

वंदन हो !

उनके रोम-रोममें पू. गुरुदेव बसे हुए हैं। एक-एक पर्याय पू. गुरुदेवके नामसे प्रगट होती है और पू. गुरुदेवके नामसे ही समाप्त होती है। सर्वत्र गुरुदेवमय ही सब दिखता है। ऐसी भक्तिको एवं ऐसे भक्तिके धारक इस बेजोड़ महात्माको बारंबार नमस्कार हो ! नमस्कार हो !

⌘ प्रभावना योग :

ज्ञानदशाकी अंतरमें वृद्धि करते-करते साथमें पू. गुरुदेवश्रीके धर्म प्रभावनाके योगमें पू. बहिनश्रीका महत्तम योगदान है। अनेक जिन मन्दिरोंकी प्रतिष्ठा - स्थापनामें उनका मार्गदर्शन रहता था और जिनेन्द्र भक्तिके अनेक पदोंकी रचना उनके हृदयसे प्रवाहित होती रहती, जो कि आज भक्ति ग्रंथमें उपलब्ध है। श्री `समयसारजी' शास्त्र पर हुए पू. गुरुदेवश्रीके प्रवचनोंको लिख लिये जो बादमें ग्रंथारूढ़ हुए, यह उनका समस्त मुमुक्षु जगतके ऊपर हुआ अनुपम उपकार अविस्मरणीय है। तथा सांप्रत मुमुक्षु समाजके लिए आवश्यक ऐसे पू. `**बहिनश्रीके वचनामृत**' में प्रसिद्ध, अमूल्य मार्गदर्शन हमारे पर हुआ उनका असीम उपकार है। और इस मुद्देको ध्यानमें रखते हुए ही निष्कारण करुणाशील पू. गुरुदेवश्रीने इसकी एक लाख प्रति छपवानेकी भावना प्रगटकी थी।

⌘ अंतिम यात्रा :

अरे...! कुदरत भी मानो जैसे उनकी श्री गुरुकी विरह वेदनासे व्यथित हो उठी है, ऐसा लगता है। उनकी विरह वेदना मानो जैसे देखी नहीं जाती हो और सहन नहीं हो सकती हो, उस प्रकार श्री गुरुका मिलन करानेके लिये कुदरत तैयार हो गई !!

लंबे समयसे चल रहा नाजुक स्वास्थ्य, वि. सं. २०४६ वैशाख वद - तीज (३) का दिन। वातावरणमें गज़बकी उदासीनता छाई

हुई है। दैनिक नित्य क्रमके मुताबिक रातको सोते वक्त बहनोंने कहा ``सुखधाम अनंत सुसंत...'' स्तुति बोल लेवें। तब पू. बहिनश्रीने कहा ``**आप अपने सुखधाममें जाईए, मैं मेरे सुखधाममें जा रही हूँ**'' इस वाक्यमें कुदरतका क्या संकेत था? कैसी चेतावनी थी ? कृ. देव श्रीमद् राजचंद्रजी रचित इस स्तुतिके वाच्यकी गहराईमें जानेके लिए उपयोग गहराईमें चला गया। निज अनन्त सुखधामकी अनंत प्रशांतिमें रमणता हो इसके लिए उपयोगने क्रीड़ा शुरू की। बाह्यमें देहका विस्मरण हो गया। विकल्पोंने शान्त होकर उपयोग को मार्ग कर दिया। अनंत गुणोंके रससे सराबोर हुई परिणति आविर्भूत होकर प्रदेश-प्रदेशसे रसास्वादन करने लगी, प्रदेश-प्रदेशमें अमृतरसके फवारेमें क्रिडा शुरू हुई और परिणति परितृप्तताका अनुभव करने लगी। देहसे भिन्न चैतन्य स्वरूपका आस्वादन हुआ।

बाहरकी परिस्थितिमें कुदरतने भी देह और आत्माकी ऐसी भिन्नताकी वास्तविकताको खड़ी कर दी और चिर विदाईकी घड़ी आ पहुँची। मुमुक्षुओंका हृदय चला गया। अन्ततः पंचम कालने तो अपना रौद्र स्वरूप दिखा ही दिया। अविरत बहती अश्रुधाराके साथ मुमुक्षुओंके हृदयसे निकल गया कि :

``तुज ज्ञान-ध्यान नो रंग, अम आदर्श रहो;
हो शिवपद तक तुज संग, माता हाथ ग्रहो''

पूज्य निहालचंद्र सोगानीजीका आध्यात्मिक जीवन परिचय

राजस्थानकी पुनीत-पुण्य वसुन्धरा अनेक धर्मात्माओंकी जन्म कर्म भूमि है । यहाँका ऐतिहासिक नगर अजमेर अपनी प्राकृतिक छटाके साथ साथ विविध कला-संस्कृतियोंके केन्द्रके रूपमें सुप्रसिद्ध है। यहाँ प्राचीन कालसे ही मूल दिगम्बर जैन धर्मावलम्बी भी प्रचुर संख्यामें निवास करते रहे हैं। यहाँ उन लोगोंने अपनी धर्माराधनाके निमित्त अपने आराध्य देवोंके कई गगनचुम्बी शिखरबद्ध जिनमन्दिरोंके निर्माण कराये हैं, जो वस्तुशिल्प व कलात्मक सौन्दर्यकी दृष्टिसे भारत विख्यात हैं। हमारे प्रस्तुत चरितनायक, निकट मोक्षगामी-धर्मात्मा श्री निहालचंद्रजी सोगानी (जिनके लिए इस आलेखमें `श्री सोगानीजी' शब्द प्रयुक्त किया है) की भी यही जन्मभूमि है।

यद्यपि सोगानी-परिवारकी अनेक पीढ़ियोंकी जन्मभूमि अजमेर

ही रही है तथापि यह कहना कठिन है कि अतीतमें उनके पूर्वज कब और कहाँसे आकर यहाँ बसे।

श्री सोगानीजीके पिता श्री नेमीचन्द्रजी धर्मनिष्ठ, सरलमना व संतोषी वृत्तिके व्यक्ति थे। उनके अन्य तीन सहोदर थे। उन्होंने आजीविकाके साधन हेतु गोटाकिनारीका हस्त-शिल्प अपनाया। परिवार मध्य वित्तीय स्थितिवाला था । श्री नेमीचन्द्रजीकी प्रथम पत्नी श्रीमती सूरजबाईका बाल्यावस्थामें ही निधन हो जानेसे उनका दूसरा विवाह गगराना ग्रामके कासलीवाल परिवारकी कन्या किशनीबाईके साथ किया गया। उसने चार पुत्र व एक पुत्रीको जन्म दिया। जिनमें श्री निहालचन्द्रजी दूसरे नम्बरके पुत्र थे।

⌘ श्री सोगानीजीकी जीवनयात्रा :

सन् १९१२में, वैसाख सुद-११, विक्रम संवत १९६९ के दिन विधिकी किसी धन्य पलमें बालक `निहाल' को जन्म देकर उनकी माताश्रीकी कोख भी निहाल हो गई। बालकका मनोहर रूप व सौम्य निश्छल मुद्रा सभीको सहज ही मोहित कर डालती। बालककी बाल सुलभ `चन्द्र' कलाएँ व चेष्टाएँ भी सभीका मन लुभाती रहती। भावी महामनाके पाद-स्पर्शित रजकण भी मानों गौरवान्वित हो, धन्य हो गये।

श्री सोगानीजी जन्मजात असाधारण प्रतिभाके धनी, विचक्षण व मेघावी रहे; परिणामत: उन्होंने अति अल्प प्रयाससे ही यथेष्ट लौकिक शिक्षा प्राप्त कर ली । वे सहज चेतना, जिज्ञासुवृत्ति, निर्भीक, कार्यनिष्ठ व परिश्रमशील होनेके साथ साथ धुनके धनी भी थे । किसी कार्यको प्रारम्भ कर देनेके बाद उसे पूरा किये बिना उन्हें चैन कहाँ ?

इसी बीच पारिवारीक-दायित्वबोधने उन्हें परिवारके उपजीवनके निर्वाह हेतु सहयोगी बना दिया, अत: उन्होंने अजमेरमें ही एक

दुकान पर नौकरी करना स्वीकार कर लिया। उनकी प्रामाणिकता, प्रबन्ध-पटुता, व्यवहार-कुशलता, कर्तव्यनिष्ठतादि सद्‌गुणोंसे प्रभावित होकर दुकान मालिकने परिस्थितिवश कालान्तरमें अपनी दुकानका स्वामित्व ही श्री सोगानीजीको सौंप दिया।

तथापि उनकी बालवस्थासे ही विलक्षण प्रकृति थी । कार्यनिष्पन्न होते ही वे गम्भीर हो, एकान्तमें बैठ किन्ही विचारोंमें खो जाया करते थे। उनकी भीतर तक झाँक लेनेवाली तेज आँखें, समाधिस्थ-से रहते अधर-सम्पुट उनकी जिज्ञासुवृत्तिको रेखांकित करते रहते। उनकी ऐसी वृत्ति घरके बड़ोंको विस्मित करती या सालती थी।

⌘ गृहस्थाश्रम :

श्री सोगानीका सन् १९३४में बाईस वर्षकी वयमें अजमेरको ही बाकलीवाल परिवारकी कन्या अनोपकुंवरके साथ विवाह हुआ। कालक्रममें उनके दाम्पत्यजीवनसे पाँच पुत्रों व तीन पुत्रियोंने जन्म लिया। जिनमेंसे प्रथम पुत्रका ४-५ वर्षकी अल्पायुमें तथा तीन पुत्रियोंका (-श्रीमती आशालता, कुमुदलता व कुसुमलताका उनके विवाहोपरांत) निधन हो गया। वर्तमानमें सबसे बड़े पुत्र श्री रमेशचन्द्र व उनके तीन अनुज क्रमशः श्री नरेशचन्द्र, श्री अशोककुमार व श्री अनिलकुमार मोजूद हैं। और वे सभी अपने पूज्य पिताश्रीके निर्दिष्ट पथ पर आनेका प्रयास कर रहे हैं।

⌘ मन्थन-काल :

यद्यपि श्री सोगानीजीके लिए अपनी बढ़ती हुई गृहस्थीकी आवश्यकताओंकी सम्पूर्ति उस दुकानकी आमदनीसे करना अति कठिन था; तथापि उन्हें तद्‌विषयक कोई विशेष मानसिक उलझन नहीं रहती थी।

परन्तु उनके कोई पूर्व संस्कारवश बालावस्था से ही स्फुरित वैचारिक द्वंद्व अविच्छिन्नधारासे जो प्रवहमान था, वह दिन दिन वृद्धिगत

होता गया। वह उन्हें न तो दुकान पर और न ही घर पर चैन लेने देता था। जीव-जगत, जीवन-मृत्यु, सत्यासत्यकी जटिल समस्याओंसे जूझता हुआ उनका घायल मन बार बार प्रश्नातुर हो उठता। क्या है सत्य ? कौन हूँ मैं ? कहाँ है अखण्ड शान्ति ? कहाँ है इन ज्वलंत प्रश्नोंका समाधान ?

इस तरह एक ओर पारिवारिक दायित्वका बढ़ता हुआ दबाव और दूसरी ओर उक्त प्रकारकी वैचारिक मन:स्थिति। दोहरी मानसिकताका यह द्वंद्व प्रबलसे प्रबलतर होता गया।

नीरव निशीथके साथमें जब निद्रालस संसार स्वप्नोंमें खोया रहता, वे उन्नीद्र होकर घरकी छत पर चक्कर लगाते रहते। धूँधले उदास आकाशमें वे किसी प्रकाशमान ध्रुव तारेकी खोज करते रहते। मन होता, पाँवोंमें पंख बाँधकर उड़ता हुआ चला जाऊँ इस घुटन और कुंठाओंकी सीमाके उस पार, जहाँ अनवरत शान्तिका अखण्ड साम्राज्य स्थापित है। अपनी ही सृष्टिके ताने-बानेसे गुथे जंजालसे मुक्त होनेके लिए उनके प्राण छटपटाते रहते। कोई दूरागत पुकार उनके कानोंमें गूँजती रहती। अनागतका कोई आमंत्रण उन्हें अपनी ओर खींचता रहता। निरन्तर बढ़ती हुई बेचैनी और विह्वलताको देखकर उनकी धर्मपत्नी भी करुणासे विगलित होकर तड़प उठती। परन्तु तादृश स्थिति बिना, ऐसी गोपित वेदनाका कारण जान पाना सम्भव कहाँ ?

भीषण अतृप्ति और प्यास, कभी न भरनेवाला शून्य, कभी न बुझनेवाली आगके घेरेमें घिरते चले गये, आत्मवेदनाके निगूढ़ पारावारमें वे डूबते गये। उन्हें प्रत्येक सांसारिक कार्य विष-तुल्य लगने लगे।

सत्यसे साक्षात्कारकी अभीप्सामें श्री सोगानीजीके जीवनका रूपान्तर होता रहा। भरे-पूरे संसारमें वे एकाकी और ऐकान्तिक होते चले गये। शान्तिकी प्राप्तिके लिए वे अनेक उपक्रम करते रहे।

यहाँ तक कि किरायेके घरमें रहने पर भी छतके ऊपर, उन्होंने अपनी आर्थिक स्थिति तदनुकूल न होनेपर भी, अपने खर्चसे एक कोठरी भी बना ली; जहाँ उनका एकान्तवास हो सका। यही कोठरी उनकी शोध और साधनाका केन्द्र बन गई। शरीरसे लौकिकधर्मका पालन करते हुए भी उनकी अस्तित्वगत उपस्थिति भावनाके रहस्यलोकमें रहने लगी।

⌘ सत्पात्रता :

साधु-सन्तोंका समागम, जिनदेव दर्शन, जैन ग्रन्थोंका आलोडन करना श्री सोगानीजीकी दिनचर्याका अनिवार्य अंग बनता गया। वे जब तब अन्य धर्मग्रन्थोंका भी तुलनात्मक अध्ययन किया करते थे। उनकी स्वाध्यायरुचि इतनी बढ़ चली थी कि वे दुकान पर भी तनिक-सा अवकाश मिलते ही या ग्राहकोंको नौकरके हवाले कर, शास्त्र-स्वाध्यायमें खो जाते थे। चिंतन-मनन-मन्थनके धुंध भरे गलियारोंमें भटक-भटक कर वे रोशनीकी तलाश करते रहे। अपनी अभीष्ट-सिद्धि हेतु उन्होंने अपने ही हाथोंसे बड़े जतनसे तैयार की हुई सामग्रीसे, लम्बे समय तक, दत्तचित्तसे चार-चार पाँच-पाँच घण्टों खड़े रहकर दैनिक पूजाएँ की, खड़गासन् ध्यान क्रियाका अभ्यास किया, एकान्तमें हठ योगियोंके हठवादको साधा, यहाँ तक कि एक बार तो गृहस्थ-बन्धनसे दूर होनेके लिए घर छोड़कर डेढ़-दो माह तक शहरकी ही धर्मशालामें एक विद्वान पण्डितको रखकर, रात-रात भर जागकर अनेक जैनग्रन्थोंका गहन परायण किया; घण्टों ही चिंतन-मनन-ध्यान आदि क्रियाओंमें रत रहते, तथापि जिस परम सत्यको पानेके लिए उनका रोम-रोम व्याकुल व बेचैन था, उसका साक्षात्कार उन्हें नहीं हुआ तो नहीं हुआ। अनमोल मनुष्यभवका एक अंश तो इस भटकनमें ही निकल गया। आत्म-विरहसे उनका आर्त मन बार बार पुकारता कि यदि सत्यसे साक्षात्कार नहीं हुआ तो

फिर मेरे इस नश्वर शरीरका इस असार संसारसे उठ जाना ही श्रेयस्कर है।

❀ दिशा-बोध :

परन्तु `जहाँ चाह है वहाँ राह है' तो फिर आत्मार्थी ही इससे वंचित क्यों ? पुरुषार्थसे जब सभीको इच्छित वस्तुकी प्राप्ति हो जाती है तो फिर `सत्य ही चाहिए अन्य कुछ नहीं' ऐसे दृढ़ निश्चयीसे सत्य आखिर कितने दिन दूर रहता ? वैसा ज्ञानीधर्मात्माओंने भी कौल-करार किया ही है कि : **``चैतन्यको चैतन्यमेंसे परिणमित भावना अर्थात् रागद्वेषमेंसे नहीं उदित हुई भावना - ऐसी यथार्थ भावना हो तो वह फलती ही है।''**

दैवयोगसे जैसे श्री महावीरस्वामीके जीवको उसके सिंहके भवमें सत् उद्‌बोधन हेतु दो चारणऋद्धिवन्त मुनिराज आकाशसे पृथ्वी पर उतरे थे, वैसे ही सन् १९४६में किसी महान मंगल बेलामें श्री सोगानीजीको किसी साधर्मीने, सोनगढ़में बिराजित दिगम्बर जैनधर्मके आध्यात्मिक सन्त श्री कहानजी स्वामीके प्रवचनोंको प्रकाशित करनेवाला मासिक `आत्मधर्म' पढ़नेके लिए दिया। प्रवचनप्रसादी स्वरूप सारगर्भित वाक्य `षट् आवश्यक नहीं, लेकिन एक ही आवश्यक है' ने उनके अन्तरको झकझोर दिया, उन्हें गहरी चोट लगी। इसी वाक्यामृतके भावभासनसे मानो अनन्त कालसे अनन्त कर्तृत्वके बोझ तले दबी, छटपटाती उनकी आत्मा सहज उबर गई और उन्हें आत्मा भार मुक्त-सा हलका भासित होने लगा। अन्तरमें रोम-रोम झनझना उठा और स्वरलहरी निकली, अरे ! मिल गया ! जिस सत्यकी खोज थी, उसका विधि-प्रकाशक मिल गया। तत्क्षण ही उन्हें पूज्य गुरुदेवश्री और उनके मंगलकारी वचनोंके प्रति श्रद्धा व अन्तर प्रीति स्फुरित हुई और अहोभाव छलक उठा, मन भक्तिविभोर हो उठा। और उन्होंने `आत्मधर्म' में अंकित श्रीगुरुके भव्य चित्रको श्रद्धा-सुमनके

रुपमें निम्न अर्घ अर्पित किया :

`उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकै;
धवलमंगलगानरवाकुले जिनग्रहे जिननाथ महंयजै।"

अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेवश्रीकी वाणीसे मुखरित रससे ओतप्रोत `आत्मधर्म' का प्रत्येक शब्द दिव्य ज्ञानका स्फोट, प्रत्येक पृष्ठ सहजानन्दकी ओर ले जानेवाला पथ-प्रकाश ! जैसे जैसे वे इसके पृष्ठ पलटते गये उनके वाच्य अवगाहनसे, अनादिरूढ़ व सर्व दोषोंका जनक मिथ्यात्व और अज्ञानकी शक्ति क्षीण होने लगी। ज्ञानग्रंथियाँ यथोचित खुलती गई। आत्माके अनन्त लोककी यात्राकी दिशा उन्हें स्पष्ट होने लगी।

यद्यपि उनके बुद्धिजन्य स्थूल विपर्यास तो निरस्त हो गये, तथापि विकट समस्या खड़ी हुई कि उस परम सत्य तक पहुँचा कैसे जाए ? तदर्थ काफी प्रयास किया, परन्तु समस्याका निवारण नहीं हो सका; स्वयंसे कोई समाधान - विधि नहीं सूझ रही थी, तो अब क्या किया जाये ? - ऐसी एक नई विचित्र उलझन उत्पन्न हो गई। एकाएक सहज ही गुरुदेवश्रीकी छविका मनमें आविर्भाव हुआ और तभी मार्गप्रकाशकके चरण-सान्निध्य और दर्शन हेतु उनका मन तड़प उठा, बस ! अब चैन कहाँ ? उस संतकी पवित्र चरणरजको अपने मस्तकपर धारण करनेकी उनकी लालसा प्रतिक्षण तीव्रसे तीव्रतर हो चली।

⌘ सद्‌गुरुका प्रत्यक्ष योग :

अंतत: वह चिरप्रतिक्षित सुमंगल घड़ी उदित हुई । श्री सोगानीजी सन् १९४६में प्रथम बार अपने आराध्य श्रीगुरुके पावन चरणोंमें पूर्णत: नत होने स्वर्गनगरी (-सोनगढ़) जा पहूँचे।

श्री सोगानीजीने अपने आराध्य साक्षात् चैतन्यमूर्तिकी पवित्र चरणरजको मस्तकपर चढ़ाने हेतु ज्यों ही अपना सिर नवाया तो

उन्हें ऐसा महसूस हुआ मानों उनके अनादिरूढ़ मिथ्यात्वकी चूलें ढीली होने लगी हैं। और वे अपने श्रीगुरुकी दिव्य मुखमुद्राको भावविभोर होकर, मंत्रमुग्ध-से अपलक निहारते हुए उनकी पारदर्शी चिन्मय मुद्राका निदिध्यासन करते रहे तो लगा जैसे श्रीगुरुके तेजस्वी मुखमण्डलकी दीप्तिसे उनका उदयगत मिथ्यात्व भी वाष्पशील हो चला हो। - ऐसी जात्यंतर स्थितिने श्री सोगानीजीके अंतरआलोडनकी दिशा स्वकेन्द्री होने योग्य अन्तर अवकाश बना दिया, जिससे उनके ज्ञानने स्वरूप-निश्चय-योग्य क्षमता ग्रहण की, उधर आत्मरससे ओतप्रोत वक्ता श्रीगुरुकी दिव्यवाणी मुखरित हुई, और उन्हें प्रत्यक्ष सत्-श्रवणका प्रथम (अपूर्व) योग मिला।

⌘ स्वरूप निश्चय :

जैसे चातक पक्षी स्वाति-बूँदके लिए `पी कहाँ...पी...कहाँ' की रट लगाये रहता है, वैसे ही श्री सोगानीजीको चिरकालसे `सत्य...सत्य' की अन्तर रटन लगी हुई थी। और जैसे चातककी प्यास केवल स्वाति-बिंदुसे ही बुझती है, वैसे ही उनके अन्तरमें धधकती-सत्यके अभावजन्य अशान्तिकी दाहको श्रीगुरुकी पियुष वाणीकी शीतल फुहारसे शीतलता सम्मत थी। और जैसे स्वाति-बिंदु सीपके सम्पुटमें पहुँचकर मोती बन जाता है, वैसे ही महान् मंगलमयी क्षणमें श्रीगुरुके श्रीमुखसे निर्झरित बोधामृत `ज्ञान अने राग जुदा छे' के भावको उन्होंने चित्तमें अवधारण किया जो अलौकिक चैतन्य चिन्तामणिके रूपमें प्रकटित हुआ।

यद्यपि श्री सोगानीजीको गुजराती भाषाका ज्ञान नहीं था, फिर भी उन्हें पूज्य गुरुदेवश्रीकी गुजराती भाषासे कोई कठिनाई नहीं हुई। और वस्तुस्थिति भी यही है कि प्रयोगप्रधानी जीवको कोई भाषा बाधक नहीं बनती।

श्री सोगानीजीके लिए तो पूज्य गुरुदेवश्रीकी धर्मसभा ही मानों

प्रयोगशालामें रूपांतरित हो गई। और उन्होंने वहीं अपना प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। तदर्थ उन्होंने `ज्ञान अने राग जुदा छे' के वाच्यकी डोर संभाली और उसके सहारे वे वाच्यके अन्तरतलमें उतरे और गहरे उतरते चले गये; उन्होंने वहाँ वर्तते राग तत्त्वका सूक्ष्म परीक्षण किया, तो उन्हें वह विभावांश, मलिन, स्वभाव-विरूद्ध, दु:खरूप और आकुलतामय भाव भासित हुआ। और वहीं साथ वर्तते ज्ञान तत्त्वके अन्वेषण पर उन्हें वह स्वभावांश, स्वच्छ, स्वभावभूत, सुखरूप और निराकुलतामय भासित हुआ - ऐसे उन्होंने उक्त दोनों भावोंको यथार्थरूपसे पहचाना और वेदन पूर्वक उन दोनोंकी मूल जातिको समीचीनरूपसे सुनिश्चित किया। और फिर वे प्रगट ज्ञानांशमें वर्तते नित्य उदित सामान्यज्ञान परसे ज्ञानस्वभावमें सन्निहित अनन्त अनन्त गुण-समुद्रकी ओर बढ़े तो वहाँ उन्हें आश्चर्यकारी अनन्त विभूतियोंसे विभूषित चैतन्य मणि-रत्नोंसे छलकते अपने स्वभावकी झलक भासित हुई। - इस भाँति अपने ही ऐसे सत्यस्वरूपके निश्चयसे उन्हें `सिद्ध स्वभावी, अनन्त सुख धारक मैं ही ऐसा महान् पदार्थ !!' - ऐसा यथार्थ भाव भासित हुआ।

⌘ अतीन्द्रिय स्वरूप-स्वानुभूति :

श्री सोगानीजीको अपने परमोपकारी सजीवन ज्ञानमूर्ति श्री गुरुकी भवान्तकारी मंगल प्रवचनप्रसादीरूप देशनासे प्रतिभासित निज परम तत्त्वकी अनहद आश्चर्यकारी अपूर्व महिमा प्रदीप्त हो उठी। जिससे उन्हें अपने परम चैतन्य तत्त्वका अभूतपूर्व रस व घोलन चालू हो गया। अनादिसे सुषुप्त पुरुषार्थ संचेतित हुआ और उनका चैतन्यवीर्य स्फुरित हो उठा। तद्नुसार उनको निर्विकल्प तत्त्वकी धुन अति वेग पूर्वक चलती रही। कब दिन ढला, कब निशाने अपनी काली चादर फैलाई, कुछ भान नहीं रहा; उन्हें सभी उदय संयोग-प्रसंग विस्मृत हो गये; बस ! अनवरत एक ही धुन चल रही थी।

जब जगतवासी नीरव निशीथिनीके अंकमें समा चुके थे तब वे 'समिति' के एक कमरेके कौनेमें बैठे अपने उद्दीप्त हुए चैतन्य-रसके प्रवाहमें निमग्न थे। उनका स्वरूपोन्मुखी सहज पुरुषार्थ पुरजोशसे गतिशील था। - ऐसी अपूर्व जात्यन्तर अन्तर स्थितिवश उनके सभी अन्तर्बाह्य प्रतिबन्धक कारण भी स्वयमेव अस्त हो गये। तभी तत्क्षण वृद्धिशील पुरुषार्थ-प्रवाह अपूर्व वेगसे वर्धमान हो अन्तर्मुख हो गया और उसी क्षण श्री सोगानीजीकी आत्माने अपने स्वसंवेदनमें रह कर, अपने प्रत्यक्ष परमात्माका दर्शन किया; और उन्हें अपने अतीन्द्रिय स्वरूपकी स्वानुभूति हुई। और तत्काल ही उनके आत्माके प्रदेश-प्रदेशमें अतीन्द्रिय स्वरूपानन्दकी बाढ़ आ गई। अनादिसे अतृप्त परिणति स्वरूपानन्द-पानसे तृप्त-तृप्त हो उठी।

जिनवाणीका निर्मल अमृत-प्रवाह उनकी अनादि कुंठाकी चट्टान तोड़कर छलछला उठा। विकल्प-समुद्रका गर्जन-तर्जन जैसे अनायास ही शान्त होकर थम गया। वे ऐसी भाव समाधिमें स्थिर हुए जहाँ न संकल्प था न विकल्प; न प्रवृत्ति थी न निवृत्ति; न मैं था न तू। रह गया केवल अनहदमें शाश्वत शान्तिका साम्राज्य।

श्रीगुरु-मिलनके प्रथम दिन ही नीरव निशाके अपार अन्धकारमें उदित ज्ञानके प्रकाशमें इस अनुपम पुरुषार्थीको यों निर्विकल्प दशा सम्प्राप्त हुई। अपने परमोपकारी श्रीगुरुकी निष्कारण कृपा-प्रसादी पाकर श्री सोगानीजीकी आत्मा निहाल हो गई।

अपूर्व, अनुपम अमृत-रस पी लेनेसे उसकी मस्तीने उन्हें मदहोश-सा बना दिया। निरन्तर यही भावनाका संवेग वर्ता कि मैं भावी सर्व काल पर्यन्त इसी ज्ञानानन्दकी मस्तीमें डूबा ही रहूँ और बस, निरन्तर आनन्दामृत पान करता रहूँ।

जब तक वे सोनगढ़ रहे दिनमें पूज्य गुरुदेवश्रीकी स्वानुभवरसमय पुरुषार्थ प्रेरक वाणीका अमृत-बोध लेते और रात्रिमें अपने कमरेमें

बैठ निजात्मरस-पानका उद्यम किया करते चेतनाके ऊर्ध्व शिखरोंकी ओर उनका आरोहण होता रहता। और सतत स्वरूपरस-घोलन चलता रहता। वे आत्माकी ही धुनमें रमे रहते और निरन्तर आध्यात्मिक तन्द्रा बनी रहती।

इस तरह एक-एक पल सरकता गया और न जाने कब १०-१२ दिन निकल गये, उन्हें पता ही न था। तत्कालीन राजनीतिक उथल-पुथल-जन्य हिंसात्मक दंगोंकी भयावह परिस्थितिमें भी वे श्रीगुरुके दर्शनार्थ इतने भावावेशमें थे कि उन्होंने परिवारवालोंको अपने सोनगढ़ जानेके सम्बन्धमें सूचना तक नहीं दी थी। घरवाले यह समझते रहे कि कारोबारके सिलसिलेमें कहीं गये हैं और दो-चार दिनोंमें लौट आयेंगे। किन्तु जब हफ्ते-दस दिनों तक भी उनका कोई समाचार तक नहीं मिला तो वे चिंतातुर हो उठे। काफी छानबीन करनेपर जब उनकी सोनगढ़ जानेकी प्रबल सम्भावनाक आभास मिला तब उनके चिंतातुर परिवारने एक तार सोनगढ़ भी दिया। उस तारके सन्देशने श्री सोगानीजीकी आध्यात्मिक तन्द्रामें विक्षेप डाल दिया। और उन्हें मजबूरन अपने भवमोचक श्री गुरुके साक्षात् चरणसान्निध्यको छोड़कर अजमेर लौटना पड़ा।

⌘ सहज उदासीनता :

श्री सोगानीजीको ज्ञानदशा पूर्व भी संसाराशक्ति नहीं थी। उन्हें सांसारिक प्रसंगोंमें कहीं कोई रस, रुझान या रुचि नहीं रहती थी। उनके बच्चे किन-किन स्कूलोंमें व श्रेणियोंमें पढ़ते हैं ? उनके लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा व विकासकी क्या व्यवस्था है ? घर-गृहस्थीकी आवश्यकताओंकी सम्पूर्ति हेतु क्या योजना है ? - इत्यादि अनेक प्रश्न व उलझनें जहाँ सामान्य मानवके अन्तर् मनको प्राय: व्यथित व कचोटते रहते हैं, वहाँ ऐसे प्रश्नोंने उनकी अन्तर्मुख मनोदशाको कभी आन्दोलित या विचलित नहीं किया।

सोनगढ़से लौटनेके पश्चात तो उनके परिणामोंमें एक विशेष प्रकारकी उदासीनता घिरी रहने लगी और निर्लिप्त भावसे परमानन्दकी खुमारी निरन्तर वर्तने लगी। सर्व पूर्व प्रारब्ध उदय-जन्य सांसारिक उपाधियों व झंझटोंकी ओर अस्थिरतावश जाता उनका उपयोग भी, उन्हें वर्तती सहज स्वरूपपरिणतिको, भाररूप प्रतीत होता व उसमें भट्टीमें जलनेसी पीड़ाका वेदन होने लगता था। तथापि सर्व उदयगत् विभावभावोंको, निरुपायतावश अविषम परिणामसे वेदते रहना ही उनकी नियति थी। तत्त्वत: सहजता, सहज समता व सहज उदासीनता सर्व ज्ञानीपुरुषोंका सनातन सदाचार होता है।

⌘ कलकत्ता प्रवास :

निवृत्ति लेकर, श्रीगुरु-चरणसान्निध्यमें रहकर एकान्तिक स्वरूप-साधनाके प्रति श्री सोगानीजीको असीम आकर्षण व भावना वर्तती थी; फिर भी उन्हें नियतिके पाशमें बँधकर, लाचारीसे सन् १९५० में अजमेर छोड़ना पड़ा; औप अपनी भावनाके अत्यन्त प्रतिकूल क्षेत्र-असत्संग-प्रसंगके बाहुल्यसे घिरे व कोलाहलयुक्त, मायामयी महानगर `कलकत्ता' में एक प्रसिद्ध कपड़ा मिलकी एजेन्सीके कार्यभारवश जाना पड़ा। सन् १९५८में उनका पूरा परिवार भी कलकत्ता आ बसा। और उक्त वस्त्र व्यवसायकी प्रवृत्तिमें उनका बाह्य शेष जीवन भी कलकत्तामें ही व्यतीत हुआ ।

इसी बीच उन्होंने सत्संगकी भावनासे सन् १९५३ से कलकत्ता स्थित बड़े मन्दिरजीमें शास्त्रस्वाध्यायकी प्रवृत्ति शुरू की थी। तथा अन्तिम वर्ष (सन् १९६४) में भी उन्होंने लगभग ४० दिनों तक सामूहिक शास्त्र-स्वाध्याय किया था।

सन् १९५६ में अपने जीवन-उद्धारक पूज्य गुरुदेवश्री कहानजी स्वामीके तीर्थयात्राके प्रसंगमें कलकत्ता पधारनेके पूर्व जब उनके भव्य स्वागतार्थ कलकत्तामें मुमुक्षुमण्ड़लकी स्थापना हुई तो उसके

प्रथम अध्यक्षके रूपमें भी सोगानीजीको मनोनीत किया गया था।

⌘ अन्तर वैराग्य :

जब श्री सोगानीजी शुरुआतमें कलकत्ता आये तब इस भागदौड़ व दावँ-पेचवाली नगरीकी ६०-७० लाखकी आबादीमें उनके पास न रहनेके लिए स्थायी जगह थी और न खाने-पीने आदिकी कोई समुचित व्यवस्था; फिर भी, ऐसी प्रतिकूलतामें भी उन्हें भान होता कि मानों इस अथाह मानव-समुदायमें `मैं एक अकेला ही सुखी हूँ', अरे ! निश्चित ही वे सुखी थे। आत्मानन्दका रसास्वाद करनेवाला स्वयंको सुखी ही क्या, सर्व सुखी महसूस करता है।

उन्हें संसार अरुचिकर था, फिर भी इस संसारके कीचड़में उन्हें फँसना पड़ा। पूर्व निबन्धित प्रारब्धवश आ पड़े इस सांसारिक कीचड़में अपने जड़ शरीरका योग देते हुए भी उनकी आत्मा निरन्तर अपने घोलनमें रहती। जब-जब भी उदयगत बाह्य संसार उन्हें अपनी ओर खींचता, गृहस्थीके जंजाल अपनी ओर आकर्षित करते तो वे यही कहते थे : `अरे मुझसे कुछ भी आशा मत रखो, पंगु समझकर दो समयका भोजन शरीर टिकानेके लिए दो।'

श्री सोगानीजीकी बुद्धिमत्ता, कार्यकुशलता व नीति सम्पन्नताके कारण उनके पास जब तब नये व्यवसायके अनेक प्रस्ताव आते थे परन्तु उपाधिको सीमित रखनेकी भावनावश वे ऐसे प्रस्तावोंको टाल दिया करते थे; यद्यपि उन्हें परिवारकी आवश्यकताओंके बढ़ते बोझका खयाल था।

यद्यपि पूर्व अज्ञानदशामें निबन्धित कर्मोंके कारण उनका सांसारिक-प्रवृत्तियोंसे बाह्य सम्बन्ध तो नहीं टूट सका, बलवान उपाधियोग अन्त तक रहा, वे सर्व उपाधियोंके बीच निर्लिप्त रहते हुए भी प्रवृत्तिका भार ढ़ोते रहे; तथापि उनकी आत्म-समाधिधारा जीवन पर्यन्त अबाधित वर्तती रही। ज्ञानधारा व कर्मधारा निरन्तर

प्रवहमान रही। सहज पुरुषार्थ वर्धमान होता रहा। जीवन पर्यन्त सहज उदासीनता व अन्तर वैराग्य उनके परिणामोंमें उग्रतासे वर्तता रहा। एक ओर उनकी प्रवर्तती उग्र अध्यात्मदशा व दूसरी ओर प्रबल उपाधियोगका परिचय उन्हींके पत्रोंसे मिलता है। ज्ञानीकी ऐसी चित्र-विचित्र व अटपटी दशाओंके अनेक पहलुओंको प्रदर्शित करते श्री सोगानीजीके पत्रोंके कुछ अंश यहाँ उद्धृत हैं :

* `मैं त्रिकाली सहज ज्ञानस्वभावी ध्रुव पदार्थ हूँ व प्रतिक्षण ज्ञानरूप परिणमन मेरा सहज स्वभाव है; जड़ आश्रित परिणाम जड़के हैं ।' पूज्य गुरुदेवके इस सिद्धांतकी घूँटीने क्षणिक परिणामकी ओरके वलणके रसको फीका कर दिया है व सहज स्वके सिवाय कोई कार्यमें रस नहीं आता है।' (पत्रांक :१, अजमेर/२२-३-१९४९)

* `यहाँ संग असत्संगका है, उदय नीरस है। वहाँ (-सोनगढ़) का योग निकट भविष्यमें होनेके आसार दिखाई नहीं देते, अत: अत्यन्त उदासीनता है व व्यवहारमें तो बेभान-सी दशा हो जाया करती है।' (पत्रांक :७, कलकत्ता/१८-५-१९५३)

* `स्वसंग, गुरुसंग व मुमुक्षुसंगके अलावा दूसरे संगको नहीं इच्छते हुए भी, अरे प्रारब्ध ! विष-तुल्य संगमें रहना पड़ रहा है, खेद है।' (पत्रांक :९, कलकत्ता/५-७-१९५३)

* `मोक्षमार्गीको कुटुम्बीजनों मध्ये सुख मिलता होवे यह कल्पना ही गलत है।

`जाल सौ जग-विलास, भाल सौ भुवन वास,
काल सौ कुटुम्ब काज, लोक-लाज लार सौ।' (श्री बनारसीदास)

उसे तो निरन्तर आत्म-रमणता चाहिए। `अरे जिसे धार्मिक जनोंके संग भी नहीं रुचते, उसे कुटुम्बसंग तो रुच ही कैसे सकता है ?' (पत्रांक : १७, कलकत्ता/२५-७-१९५४)

* `व्यवहारसे व खास तौरसे अशुभ-योगसे पूर्ण निवृत्ति चाहते

हुए भी, गृहस्थ आदि व्यवसायिक जंजालोंका ऐसा उदय है कि मन नहीं लगे वहाँ लगाना पड़ रहा है, बोलना नहीं चाहते उनसे बोलना पड़ता है, ऐसी योग्यता है।'

(पत्रांक :२६, कलकत्ता/१६-१२-१९६१)

⌘ सत्संग भावना :

श्री सोगानीजीको अपने श्रीगुरुके चरणोंमें निवासकी भावनाका प्रबल आवेग रह रह कर उद्वेलित करता रहता था; तथापि पूर्व प्रारब्धयोगके बिना उन्हें सांसारिक जंजालोंसे विमुक्त हो सकनेका योग नहीं मिलता था। यद्यपि वे सर्व प्रथम सोनगढ़ आये ते तब ही उनकी तीव्र भावना थी कि `कोई मकानका प्रबन्ध कर निरन्तर गुरुदेवके चरणोंमें लाभ उठाऊँ' (देखें पत्रांक - १९) परन्तु वैसा योग तो नहीं बन पाया; बल्कि कभी-कभी तो लम्बे अन्तरालके पश्चात् ही श्रीगुरुके दर्शनोंका योग बनता था।

श्री सोगानीजी सर्व प्रथम सन् १९४६में सोनगढ़ पधारे थे; तत्पश्चात् उनका सोनगढ़ आनेका योग क्रमश: सन् १९४८, १९५२, १९५९, १९६०, १९६१, १९६२, १९६३ ही बन पाया था और वह भी मात्र थोड़े-थोड़े दिनोंके लिये ही। अभिवांछित योग न मिलनेके प्रति उन्हें निरन्तर खेद वर्तता रहा। उन्हें अपने श्रीगुरुके चरण-सान्निध्यमें न रह पानेकी कितनी वेदना सालती थी, जिसकी झलक उनके पत्रोमें मिलती है। उदाहरणार्थ :

* `पू. गुरुदेवकी स्मृति इस समय भी आ रही है व आँखोंमें गर्म आँसू आ रहे हैं कि उनके संग रहना नहीं हो रहा है।'

(पत्रांक - ४, कलकत्ता/२१-६-१९५३)

* `यहाँ तो पुण्ययोग ही ऐसा नहीं है कि वहाँ (सोनगढ़) का लाभ शीघ्र-शीघ्र मिला करे । निवृत्तिके लिए जितना अधिक छटपटाता हूँ उतना ही इससे दूर-सा रहता हूँ, ऐसा योग अबके हो रहा

है। कई बार तो फूट-फूट कर रोना-सा आ जाता है। शायद ही कोई दिवस ऐसा निकलता है कि बारम्बार वहाँ का स्मरण नहीं आता होवे।' (पत्रांक :८, कलकत्ता/२८-६-१९५३)

* `अरे विकल्प ! यदि तुझे तेरी आयु प्रिय है तो अन्य सबको गौण कर व गुरुदेवके संगमें ले चल, वरना उनका दिया हुआ वीतरागी अस्त्र शीघ्र ही तेरा अन्त कर डालेगा।'

(पत्रांक :९, कलकत्ता/५-७-१९५३)

* `रह-रह कर विकल्प होता रहता है कि कमसे कम एक-दो वर्ष निरन्तर अलौकिक सत्पुरुषके सहवासमें रहना होवे, परन्तु प्रारब्ध अभी ऐसा नहीं दिखता है।'

(पत्रांक :१४, कलकत्ता/१-२-१९५४)

* `पुण्ययोग नहीं है, वहाँ (-सोनगढ़) का संयोग नहीं है, अरुचिकर वातावरणका योग है । महान् अफसोस है।'

(पत्रांक : १५, कलकत्ता/ २५-६-१९५४)

* `हे प्रभो ! शीघ्र इधरसे निवृत्ति होकर गुरु-चरणोंमें रहना होवे, जिन्होंने अखण्ड़ गुरुवासमें चरना सिखाया है, यह ही विनती।'

(पत्रांक : २७, कलकत्ता/ ९-४-१९६२)

❀ निवृत्ति भावना :

वस्तुत: निवृत्तिकी तीव्र अभिलाषा सर्व ज्ञानी पुरुषोंको निरन्तर वर्तती ही है। श्री सोगानीजी भी निवृत्तिके लिए सतत छटपटाते रहे, निवृत्तिके लिए योजना घड़ते परन्तु वैसे पुण्ययोगके अभावमें वे फलित न हो पाती; तथापि निवृत्तिकी भावना कितनी बलवती थी और उसकी वार्ता भी उन्हें कितनी रुचिकर थी, उसका परिचय निम्न उद्धरणसे स्पष्ट मिलता है :

* `आपने लिखा कि अब निवृत्ति काल पका - यह पढ़कर बिजलीके वेगकी तरह आनन्दकी लहर आई थी; कारण पूर्व निवृत्ति

ही विकल्परूपसे निश्चये भजी थी; ऐसा पूरा प्रतीतिमें आता है।
(पत्रांक :२९, कलकत्ता/३-९-१९६२)

⌘ एकान्त प्रियता :

श्री सोगानीजीको एकान्तवास अति रुचिकर था। वे जहाँ तक सम्भव होता वहाँ तक किन्हीसे मिलना-जुलना व परिचयमें आना पसन्द नहीं करते थे। वे जहाँ हो वहाँ एकांत खोजते रहते। प्राय: उन्हें अपने कमरेमें बन्द रहना ही अभीष्ट था। भीड़ व कोलाहलभरे वातावरणमें उनका दम घुटने-सा लगता था।

उनके परिवारके कलकत्ता आ जानेके पहले जब भी ३-४ दिनोंकी छुट्टियोंमें बाजार आदि बन्द रहनेकी वजहसे बाहर जानेकी आवश्यकता नहीं समझते तो वे ढाबेसे भोजनकी थाली अपने कमरेमें ही मँगा लेते और एक बारमें जो भी खाना थालीमें आता उसे ही खा कर, थाली कमरेके दरवाजेके बाहर सरका देते। यों ऐसे प्रसंगों पर वे अपने निवासस्थानसे तीन-तीन चार-चार दिनों तक बाहर ही नहीं निकलते।

वे लम्बी अवधि तक कलकत्ता रहे फिर भी खास परिचित मार्गोंके अलावा दूसरे मार्गोंसे अपरिचित ही रहे।

जब सन् १९५३ के श्री बाहुबली-महा मस्तकाभिषेक समारोहके समय एकांतवासकी यह समस्या जटिल थी तो वे देर रात गये अकेले ही पहाड़के ऊपर चढ़ जाते और वहीं पूरी रात अपने स्वरूप-ध्यान-घोलनमें गुजार देते, तथा फिर प्रात: ही पहाड़से उतरकर कमरे पर जाते।

एकान्तवासके प्रति रुझानके परिणाम स्वरूप बाह्य जगत उनके लिए अपनी उपस्थिति खोता जाता था।

तत्त्वचर्चाके दौरान एक बार उन्होंने बतलाया कि `मुझे तो एकांतके लिए समय नहीं मिले तो चैन ही नहीं पड़ता।' ...`आखिर

तो एकांत (अकेला) ही सदा रहना है। तो शुरूसे ही एकांतका अभ्यास दो-चार-पाँच घण्टा चाहिये।'

⌘ श्री सोगानीजीकी दृष्टिमें सांसारिक प्रसंग :

समस्त लोक समुदाय विवाह जैसे प्रसंगको मांगलिक, शुभ व आनन्द-उमंगका महत्वपूर्ण अवसर मानता है। परन्तु श्री सोगानीजीने अन्तरंग साधर्मीको अपने पुत्रके विवाहका निमन्त्रणपत्र भेजा अवश्य, पर साथमें जो विचार उन्होंने लिखे उससे उनकी सांसारिक-प्रसंगोंकी तुच्छता और सत् प्रतिकी अनन्य महिमा ही उजागर होती है। तदर्थ पत्रांक : २७, कलकत्ता/९-४-१९६२ का निम्न उद्धृत अंश द्रष्टव्य है :

* `बड़े पुत्रकी शादी ता. १६-४ की है; पुण्यवानोंको शुभप्रसंगका योग है, उन्हें अशुभ प्रसंग पर बुलवाना ठीक नहीं है; फिर भी लौकिक व्यवहारवश दो पत्रिकाएँ भिजवाई हैं।'

⌘ निर्मानता :

सर्व लौकिकजनोंको जहाँ हो वहाँ - घर, परिवार, समाजमें सर्वत्र अपने प्रभुत्व-मान-सन्मान-स्थान प्राप्तिकी अन्तरंग अभिलाषा निरन्तर वर्तती है। वहीं सच्चे आत्मार्थीकी ऐसे सभी प्रसंगोंसे दूर रहनेकी सहज वृत्ति रहती है। यदि उसकी विशेष योग्यता हो तो भी वह उसे गोपित रखना चाहता है। अपनी प्रसिद्धिका अभिप्राय उसे नहीं रहता। श्री सोगानीजीकी आत्मदशा अद्भुतरूपसे वर्तती थी परन्तु वे उसे प्रसिद्ध नहीं करना चाहते थे। फिर भी उनसे एक अन्तरंग साधर्मीने दूसरे ढंगसे अनुरोध किया कि : पूज्य गुरुदेवश्रीके निमित्तसे आपको आत्मबोध हुआ है, इस बातको जानकर उन्हें सहज प्रसन्नता होगी, अत: आपकी ज्ञानदशाके बारेमें गुरुदेवश्रीको बतलानेका विकल्प है। तब उन्होंने कहा : `कोई जाने, नहीं जाने इसमें आत्माको कोई फायदा नहीं है। अनन्त सिद्ध हो गये हैं,

(लेकिन) आजकल कोई उनके नाम तक भी नहीं जानता है। असंख्य सम्यग्दृष्टि (तिर्यंच) ढाई द्वीप बाहर मौजूद हैं, उन्हें कौन जानता है।' उनका यह प्रत्युत्तर उनके वर्तते निम्न अभिप्रायके अनुरूप ही था। यथा :

`फूल बागमें हो या जंगलमें, उसको कोई सूँघो या न सूँघो, उसकी कीमत तो स्वयंसे है, कोई सूँघे तो उसकी कीमत बढ़ नहीं जाती अथवा नहीं सूँघे तो वह मुरझा नहीं जाता। इसी तरहसे कोई अपनेको जाने या न जाने उससे अपना मूल्य थोड़ा ही है? अपना मूल्य तो अपनेसे ही है। कोई मान-सन्मान देवे, न देवे- सब धूल ही धूल है, उसमें कुछ नहीं है।'

❋ निस्पृहता :

श्री सोगानीजी जिस कपड़ा मिलकी एजेन्सीका व्यवसाय करते थे उस मिलके मालिकको एकबार जब उनके धर्म-प्रेम व योग्यताका पता चला तो उन्होंने कौतूहलवश उनको जब तब अपने घर आकर धर्म समझानेको कहा। परन्तु उन्होंने उनमें वास्तविक धर्म-जिज्ञासाका अभाव तथा कौतूहलता देखकर, समयाभावके बहाने उनके उक्त प्रस्तावको टाल दिया। श्री सोगानीजीके मनमें तो (बादमें उन्हीं के बतलाए अनुसार) यों विचार आया कि : यह तो सांसारिक आवश्यकता पूर्ति हेतु उनके पास आनेकी विवशता है; अन्यथा ऐसे कार्योंके लिए आत्मार्थीके पास समय ही कहाँ ? जहाँ ऐसी परिस्थितिमें सामान्य लौकिक जन जिनसे अपने अर्थ-प्रयोजनकी सिद्धिकी अपेक्षा रहती है वे उनके अनुरूप वर्तन करते हैं, वहीं श्री सोगानीजीका उक्त प्रकारका वर्तन उनकी निस्पृहवृत्तिको उजागर करता है।

❋ तत्त्व-प्रेम :

तत्त्व-प्रेमी जिज्ञासुओंके प्रति श्री सोगानीजी इतने करुणावन्त थे कि व्यावसायिक व निजी प्रवृत्तियोंके बीच भी समय, स्थान आदि

सब बातोंको गौण कर उनकी जिज्ञासाओंका समाधान कर दिया करते थे। कई बार तो वे सड़कके किनारे खड़े-खड़े ही काफी देर तक धर्म-चर्चा करते रहते थे।

उनका एक मुमुक्षुसे व्यावसायिक सम्बन्ध भी था, उससे व्यापारिक कार्य यथाशीघ्र निपटा कर वे धर्म-चर्चामें लग जाते थे।

वे आखिरके वर्षोमें धार्मिक प्रसंगोंके अवसर पर मुमुक्षुओंके द्वारा घिरे रहने लगे, परन्तु समय मिलते ही अकुलाए बिना उनके प्रश्नोंके उत्तर दिया करते थे।

रुचिवन्त अन्तरंग परिचयवाले साधर्मियोंके साथ तो उन्हें देर रात गये तक धर्म-चर्चामें व्यस्त देखा जाता था।

व्यवसायिक कामसे थक कर लौटने पर भी यदि कोई मुमुक्षु तत्त्व-जिज्ञासा लिए घर पहुँच जाता तो वे तत्काल उसकी उलझन दूर कर देते थे।

⌘ निश्चय-व्यवहारसंधि युक्त जीवन :

सर्व ज्ञानीधर्मात्माओंकी साधक परिणतिमें निश्चय-व्यवहारका अद्‌भुत सामंजस्य वर्तता है। तत्त्वत: साधकदशाका ऐसा ही यथार्थ स्वरूप होता है। निश्चय-व्यवहाररूप प्रवर्तती धर्मदशाके संतुलन व सुसंगत संधिके आधारसे ही धर्मात्माकी दशाका प्रमाणीकरण होता है। श्री सोगानीजीकी इन दोनों दशाओंके बीच वर्तते सम्यक् संतुलनके प्रमाण उनके पत्र है। यथा :

* `सत्‌गुरु द्वारा प्राप्त अनुभव ऐसे कालमें विषमता आदिके समतापने वेदे व अप्रतिबद्ध स्वभावसन्मुख तीव्र वेग करे, यह ही सबसे श्रेष्ठ है व शीघ्र मनोरथ पूर्ण होनेका यह शुभ लक्षण है।' (पत्रांक : ७, कलकत्ता/१८-५-१९५३)

* `अहो गुरुदेव ! आपने तो इन दोनोंसे (पुण्य-पापसे) ही निराली वृत्ति दिखा दी है, जो कि इनके होते हुए भी विचलित नहीं होती,

खूँटेके (ध्रुवके) सहारेसे डिगती नहीं है, उसे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावका प्रतिबन्ध नहीं है। पू. गुरुदेव कहते हैं कि जो कुछ लाभ है सो तो यह वृत्ति ही है, अनन्त सुखोंके पिण्डके साथ रहती है, फिर चिन्ता काहे की ? यह तो स्वयं स्वभावसे ही चिन्ता रहित है, निश्चिंतवृत्तिमें चिन्तित वृत्तिका तो अत्यन्त अभाव है। हे भगवान ! आपकी यह वाणी मस्तिष्कमें नित्य घूमती रहे, यह ही भावना है।

(पत्रांक : १५, कलकत्ता/२५-६-१९५४)

* `प्रदेशे-प्रदेशे मैं मात्र चैतन्य-चैतन्य व आनन्द ही आनन्दसे ओतप्रोत वस्तु हूँ। स्वरूपरचना पर्यायमें स्वत: ही हुए जा रही है। इच्छा तोडूँ, स्वरूपकी वृद्धि करुँ आदि विकल्पोंका जिस सहज स्वभावमें सहज ही अभाव है। अरे ! सहज शुद्ध पर्यायका भी जिस त्रिकाली ध्रुव वस्तुमें सहज ही अभाव है, ऐसी नित्य वस्तु मैं हूँ, त्रिकाली परिपूर्ण हूँ।' (पत्रांक :१७, कलकत्ता/२५-७-१९५४)

* `परिणतिको आत्मा ही निमित्त होवे अथवा भगवान .... भगवानकी गुंजार करते आए (-श्री कहानजी स्वामी), अन्य संग नहीं, यह ही भावना।' (पत्रांक :२६, कलकत्ता/१६-१२-१९६१)

* `विकल्पोंको तो धधकती हुई भट्टीके योगोंका निमित्त है व उस मध्ये हो रहा है, जबकि चैतन्यमूर्ति विकल्पोंको छूनेवाली भी नहीं है, अधूरी दशाके विकल्पांशोंमें श्रद्धामें जमी हुई मूर्तिका एकरस आलिंगन कहाँ ?' (पत्रांक :२९, कलकत्ता/३-९-१९६२)

* `वर्तमानमें ही परिपूर्ण हूँ । वर्तमानसे ही देवादिक पर अथवा उन आश्रित रागसे किंचित् मात्र लाभका कारण नहीं । लाभ मानना ही अलाभ है।' (पत्रांक :३०, कलकत्ता/८-११-१९६२)

यों श्री सोगानीजीके व्यक्तित्वमें एक ओर निश्चय प्रधानताकी विस्मयकारी शैली व दूसरी ओर गुरुभक्ति व निमित्तका यथार्थ मूल्यांकनका अत्यन्त सुन्दर व स्वाभाविक सन्तुलन तैरता है, जो

आत्मार्थियोंके लिए सतही तौर पर विरोधाभास दिखनेवाले ऐसे अभिप्रायमें अंतर्निहित परिणामकी अविनाभावी व सहज यथार्थ दिशारूप पहलूके रहस्यको समझनेमें अत्यन्त सार्थकर निमित्त है। यों वीतरागमार्गके पथिक ही भक्ति व गुरु-महिमाके आवरणमें छिपे निजरसको यथार्थत: संवेदित करते हैं।

⌘ गुरु-भक्ति :

यद्यपि श्री सोगानीजीने निरपवादरूपसे स्वत्त्वकी सर्वोच्चता व एकमात्र उसीके अवलम्बनको मुक्तिमार्गके रूपमें सर्वत्र गाया है, तथापि जिन श्री गुरुके निमित्तसे उन्होंने अनादि संसारके एकच्छत्री सरदार दर्शनमोहको परास्त कर, मोक्षमार्गके प्रथम सोपानको पाया है; उनके अनहद उपकारके मूल्यांकनवश साधकके हृदयमें किस असाधारण सर्वार्पणता, भक्ति, महिमा, विरह-वेदन स्पंदित व संवेदित होती रहती है उसका विस्मित-सा कर देनेवाला जीवन्त उदाहरण भी उन्हींके पत्रोंमें सुस्पष्ट मिलता है । यथा :

* `वहाँ (-सोनगढ़)की धूलके लिए भी तड़पना पड़ता है। गुरुदेवके दृष्टांत अनुसार भभकती भट्ठीमें गिरनेका-सा प्रत्यक्ष अनुभव यहाँ एक दिनमें ही मालूम होने लग गया है। धन्य है वहाँके सर्व मुमुक्षु, जिनको सत्पुरुषका निरन्तर संयोग प्राप्त है।'

(पत्रांक :६, अजमेर/१८-४-५३)

* `हे गुरुदेव ! आपकी वाणीका स्पर्श होते ही मानो विश्वकी उत्तमोत्तम वस्तुकी प्राप्ति हो गई। क्या मैं मुक्त होनेवाला हूँ। अरे ! शास्त्रोंमें जिस मुक्तिकी इतनी महिमा बखानी है, उसे आपके शब्द मात्रने इतना सरल कर दिया।'

(पत्रांक :१७, कलकत्ता/२५-७-१९५४)

* `भरतखण्डका अलौकिक कर्ता-कर्म अधिकार, आत्मरससे ओतप्रोत वक्ता, साधक मुमुक्षुगण श्रोता, जिनालयकी सामूहिक भक्ति,

निरन्तर अमृतवाणीसे संस्कारित - तृप्त भूमिस्थान आदि समवसरण-से दृश्य पुण्यहीनको नहीं सम्भवते, अत: वियोग है।'

(पत्रांक :२४, कलकत्ता/१९-१०-१९६१)

* `शुभयोगमें भी थकान अनुभव करनेवाले जीवके लौकिक योगकी तीव्र दु:ख दशा पर.. हे करुणासिंधु ! करुणा करो...करुणा करो, यह ही विनती।' (पत्रांक :२४, कलकत्ता/१९-१०-१९६१)

* `सतत दृष्टिधारा बरसाते, अखण्ड़ चैतन्यके प्रदेश-प्रदेश सहज महान् दीपोत्सवकी क्षणे-क्षणे वृद्धि करते श्री गुरुदेवको अत्यन्त भक्तिभावे नमस्कार।' (पत्रांक :२५, कलकत्ता/१-११-१९६१)

* `दरिद्रीको चक्रवर्तीपनेकी कल्पना नहीं होती। पामरदशावालोंको `भगवान हूँ...भगवान हूँ' की रटण लगाना, हे प्रभो ! आप जैसे असाधारण निमित्तका ही कार्य है।'

(पत्रांक :२६, कलकत्ता/१६-१२-१९६१)

* `अत: तीर्थंकरसे भी अधिक सत्पुरुषका योग प्राप्त हुआ है, जिनकी नित्य प्रेरणा उधरसे विमुख कराकर स्वयंके नित्य भण्डारकी ओर लक्ष्य कराती रहती है, यहाँ से ही पूज्य गुरुदेवके न्याय अनुभव सिद्ध होकर दृढ़ता प्राप्त कराते हैं।'

(पत्रांक :४४, कलकत्ता/१०-९-१९६३)

⌘ अध्यात्म-दशा :

यद्यपि विकल्पात्मक वृत्तियोंका तो सहज ही अनुमान कर लिया जाता है परन्तु निर्विकल्पताका माप तो बाह्यसे नहीं किया जा सकता है, वह तो स्वयंके अनुभवका विषय है। और अनुभव लेखनीमें व्यक्त करना अशक्य होता है। तथापि श्री सोगानीजीने अपनी प्रवर्तती अध्यात्मदशाको अनुपम पद्धतिसे यत्किंचित् इंगित किया है। उनकी अंतर्दशाके परिचयार्थ उनके पत्रों व अन्य प्रसंगोंको सूक्ष्मतासे निरीक्षण करें तो उसकी प्रतीति सहज ही हो आती है।

उनकी आत्मपरिणति स्वस्वरूपमें उग्रतासे जमी रहती, निरन्तर स्वरूपरस प्रगाढ़ होता रहता और स्वरूपघोलन व उसकी धुन अनवरत चलती रहती थी। तादृश उनके मन-वचन-काय योग भी इतने उपशमित थे कि जिससे वे जनसमुदायमें भी किसी पैनी नजरवालेके द्वारा सहज पहचाननेमें आ सकते थे।

उदाहरणार्थ : बम्बईमें एकबार वे एक मुमुक्षुके यहाँ भोजन करने गये, वहाँ अन्य लोग भी आमंत्रित थे, जब भोजनके पश्चात् सभी चले गये तब उसके वयोवृद्ध रसोईवालेने उत्सुकतावश पूछा कि वे एक नये व्यक्ति कौन थे ? उस मुमुक्षुने इस प्रश्नका कारण जानना चाहा तो रसोईवालेने कहा कि अपनी जिंदगीमें मैंने अपने हाथों हजारों लोगोंको जिमाया है परन्तु आज पहली बार एक प्रतिमाको जिमाया है। वह `प्रतिमा' श्री सोगानीजी थे।

यद्यपि वे बाह्यमें खाने-पीने-बोलने-चलने आदिकी प्रवृत्तियोंमें दिखलाई देते, तथापि उनके गाढ़ अन्तरंग परिचितोंको ऐसा स्पष्ट खयाल आता कि उनकी आत्मपरिणति अन्तरमें अति आश्चर्यकारी रूपमें जमी हुई है।

अपने निवास स्थानमें भी उन्हें अपनी शारीरिक आवश्यकताओंका खयाल तक नहीं रहता था। अपने वस्त्रों आदिका भी उन्हें पता नहीं रहता था। घरमें क्या है और क्या नहीं, इसकी जानकारी उन्हें नहीं रहती थी। जो आमदनीकी रकम उनको मिलती वे उसे अपनी धर्मपत्नीको सोंप देते।

उन्हें स्वरूपध्यान-घोलनकी मुख्यता वर्तती थी और अन्य सबकी गौणता, फिर वह चाहे भोजन हो या व्यवसाय या फिर कुछ अन्य। वे अपने कमरेसे बाहर कब निकलेंगे या कमरेमें कब चले जायेंगे या किस समय व्यावसायिक प्रवृत्तिहेतु बाजार जायेंगे, कुछ भी निश्चित नहीं था।

उन्हें अपनी पसंदीदा भोजन-सामग्री कुछ न थी; क्या खाया और कैसा था, कुछ भान नहीं रहता था। कभी तो ऐसा भी होता कि वे भोजन करनेके लिए कमरेसे आये और एक-आध रोटी खा कर ही पुन: कमरेमें चले जाते और द्वार बन्द कर लिया करते।

बहुधा दीर्घ समय ध्यानमें बैठनेके दौरान थकान लगनेपर वे लेट जाते थे परन्तु पैरोंकी पद्मासनमुद्राको यथावत् रखते हुए ही- इससे स्पष्ट है कि शारीरिक अनुकूलताके लिए वे ऐसे मुद्रा बदल लेते थे, परन्तु उपयोगकी अंतर्मुखताका प्रयास यथापूर्व बना रहता था।

सभी सम्यग्दृष्टियोंके अनन्तानुबन्धी कषाय चौकड़ीका अभाव होनेसे उनके तद्निमित्तक निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि- इन तीन प्रकारकी निद्रा-प्रकृतियोंका भी अनुदय रहता है। श्री सोगानीजीका निद्रा-काल भी सहज ही अति अल्प हो गया था जो उनकी अंतर्दशा व उग्र पुरुषार्थको लक्षित करता है। उन्हींके वचनानुसार : `मुझे तो (सोते वक्त) पहले दो घण्टे नींद नहीं आती, फिर थोड़ी नींद आ जाए जगते ही ऐसा लगे कि क्या नींद आ गई थी !! फिर नींद उड जाती है; और यही (स्वरूप-घोलन) चलता रहता है।

श्री सोगानीजीने अपनी प्रवर्तती दशाके सम्बन्धमें जो उल्लेख किया है, वह प्रस्तुत है :

* `गुरुदेवश्रीके गुरुमंत्रका उपयोग करते रहनेसे अर्थात् अखण्ड ज्ञानस्वभावका आश्रय लेते रहनेसे, जैसे-जैसे पुण्यविकल्प सहज ही टूटते जाते हैं वैसे-वैसे आत्मामें सर्व विशुद्धि सहज ही विकसित होती जाती है।' (पत्रांक :२, अजमेर/२९-९-१९४९)

* `मैं मुझमें मेरे गुरुदेवको देखनेका सतत प्रयत्न करता रहता हूँ और जब-जब गाढ़ दर्शन होता है तब-तब अपूर्व-अपूर्व रसास्वादका

लाभ लेता रहता हूँ, मानसिक विकल्परूपी भारसे हलका होता रहता हूँ, सहज ज्ञानघन स्वभावमें वृद्धि पाता रहता हूँ।'

(पत्रांक :३, अजमेर/३-७-१९५०)

* `सहज परम निवृत्तिमय कारणपरमात्माका आश्रय पूज्य गुरुदेवने ऐसा बतला दिया है कि उसके अवलम्बनसे सहज परम अनाकुलता उत्पन्न होती रहती है।' (पत्रांक :५, कलकत्ता/२८-१०-१९५२)

* `जिस आत्मद्रव्यमें परिणाम मात्रका अभाव है उसमें जम गया हूँ । परिणमन सहज, जैसा होता है, होने दो, हे गुरुदेव ! आपके इन वचनोंने अपूर्व निश्चलता पैदा कर दी है।'

(पत्रांक :१९, कलकत्ता/२३-३-१९५६)

* `राग टूटना निश्चित है क्योंकि श्रद्धाने राग-अरागरहित स्वभावका आश्रय लिया है व वीर्यकी क्षण-क्षण उधर ही उदव सहज उन्मुखता होनेसे ज्ञान-आनंदमयी अरागी परिणाम ही वृद्धिगत होंगे, यह नियम प्रत्यक्ष अनुभवगम्य है।'

(पत्रांक :१९, कलकत्ता/ २३-३-१९५६)

* `यहाँ तो पूज्य गुरुदेवने आत्मगढ़में वास कराकर प्रसाद चखाया है; अत: क्षणिक विकल्प भी सहज विस्मरण होते रहते हैं। कहता हूँ कि : हे विकल्पांश ! तेरे संग अनादिसे दु:ख अनुभव करता आया हूँ, अब तो पीछा छोड़। यदि कुछ काल रहना ही चाहता है तो सर्वस्व देनेवाले परम उपकारी श्री गुरुदेवकी भक्ति-सेवा-गुणानुवादमें ही उनके निकट ही वर्त।'

(पत्रांक :४२, कलकत्ता/२१-८-१९६३)

❀ भावाभिव्यक्ति-क्षमता :

निर्विकल्प क्षणोंमें वर्तित विविध गुणोंके पर्याय भावोंका ज्यों का त्यों सूक्ष्म विश्लेषण प्राय: कहीं पढ़नेमें नहीं मिलता है। और वस्तुस्थिति भी यही है कि निर्विकल्पदशाको विकल्पगम्य करके उसे लेखबद्ध

करना ज्ञानीकी विशिष्ट सामर्थ्यका ही द्योतक होता है। निम्नांकित उद्धृत पत्रांश श्री सोगानीजीकी उक्त क्षमताका प्रमाण है :

* `अहो ! बिना विकल्पका कोरा आनंद ही आनंद ! त्रिकाली गुब्बारेको पूर्ण फुलाये बिना (-विकसित किये बिना) अब एक क्षण भी चैन नहीं है। ध्यानस्थ अवस्थामें बैठा हुआ, अथाह ज्ञानसमुद्र व उसमें सहज केलि ! ऐसा अनुभव मानों `मैं ही मैं हूँ' आनंदकी घूँटे पिये जा रहा हूँ - अरे रे ! वृत्ति आनंदसे च्युत होने लगी। पर वाह रे पुरुषार्थ ! तूने साथ रही उग्रताका संकल्प किया, माने अथाहकी थाह, सदैवके लिए एकबारमें ही पूरी ले लेगा। प्रदेश-प्रदेश व्यक्त कर देगा। सहज आनंदसे एक क्षण भी नहीं हटने देगा। पर अरे योग्यता ! तूने पूर्णताके संकल्पका साथ नहीं देकर अन्तमें च्युत करा ही तो दिया, तो फिर इसका दण्ड भी भुगतना पड़ेगा।' (पत्रांक :१४, कलकत्ता/१-२-१९५४)

⌘ अनूठी कथन-पद्धति :

यद्यपि त्रिकालवर्ती सर्व ज्ञानियोंकी तत्त्वप्ररुपणामें कहीं मतान्तर संभवित नहीं है, क्योंकि ज्ञानी पदार्थ-दर्शनपूर्वक सिद्धांत निरूपित करते हैं, अत: सभीमें तत्त्व अविरोधरूपसे अक्षुण्ण रहता है। सभी आचार्यदेवोंके वचनोंके आलोडनसे यह सुप्रतीत होता है कि सूत्र बदलते हैं पर कहीं सिद्धांत नहीं बदलते। तथापि सर्व ज्ञानियोंकी कथन-शैलीमें साम्य नहीं दिखता क्योंकि प्रत्येककी शैलीमें अपनी मौलिकता वर्तती है।

वास्तविक स्थिति तो ऐसी है कि `त्रिकाली अस्तित्वमयी स्व, इस आश्रित परिणमी हुई आंशिक शुद्धवृत्ति व देवादिक प्रत्येकी आंशिक बाह्यवृत्ति-तीनों अंशोंका एक ही समय धर्मीको अनुभव होता है - ऐसे निर्बाध ज्ञानसे विशिष्ट आत्माको (-सम्यग्ज्ञानीको) प्रमाण कहते हैं। तथापि ज्ञानी धर्मात्मा विवक्षित विवक्षा हेतु कभी द्रव्यार्थिकनय

व कभी पर्यायार्थिकनयकी मुख्यता-गौणताकी कथन-शैलीमें विषय प्रतिपादित करते हैं, तो भी सिद्धांत तो त्रिकाल अबाधित ही रहते हैं।

श्री सोगानीजीकी द्रव्यदृष्टिकी प्रधानतावाली शैली रही है, जो अनादि कालसे पर्यायमूढतावश अति जटिल व विकट पर्यायबुद्धिरूपी नाग-पाशके कड़े बंधनमें जकड़े हुए जीवको छुड़ाने हेतु परम उपकारभूत है।

यद्यपि उनकी वाणी अति शांत व मृदु थी फिर भी श्रोताको ऐसा संवेग आ जाता कि मानो तीव्र पुरुषार्थसे अभी छलांग लगाकर आत्मा आत्मामें स्थिर हो जाए। इसी भाँति उनकी वाणीमें कोई ऐसा अद्‌भुत ज़ोर था कि जिसके स्पर्श होते ही पात्र जीवका अनादिसे सुषुप्त पड़ा आत्मा एकदमसे खड़ा हो जाए।

श्री सोगानीजीकी अन्य विशेषता यह भी थी कि `ज्ञानभण्डार आत्मामेंसे ज्ञान उघड़ता रहता है, शास्त्रसे नहीं' - इस सिद्धांत वाच्यके वाच्यमें, वे स्वानुभूत ज्ञानके प्रकाशमें ही सभी जिज्ञासाओं और प्रश्नोंका समाधान देते थे। इसी कारणसे प्राय: उनके पत्रों या प्रश्नोत्तर-चर्चामें, शास्त्राधारके बजाय स्वानुभूत ज्ञानाधार मुख्यरूपसे प्रितबिंबित होता है। और वस्तुस्थिति भी यही है कि आगमादि सभी प्रमाणोंमें अनुभवप्रमाणको ही सर्वत्र सर्वोत्कृष्ट मान्य किया गया है। श्री सोगानीजीकी उक्त विशिष्टताका उदाहरण प्रस्तुत :

एकबार श्री सोगानीजीके साथ चल रही तत्त्व-चर्चामें एक मुमुक्षुने यह प्रश्न किया कि `पर्यायका क्षेत्र भिन्न है या अभिन्न ? इसका उत्तर उन्होंने यों दिया कि : `दृष्टिका विषयभूत पदार्थ, पर्यायसे-क्षेत्रसे भी भिन्न है।' - ऐसे उत्तरमें उपादेयभूत परमपारिणामिकभावकी उपादेयताकी ठोस ध्वनि सन्निहित है।

वहीं जब दूसरे मुमुक्षुने प्रश्न किया कि `अशुद्ध पर्यायका उत्पाद्

कहाँसे हुआ और वह पर्याय स्वयं होकर कहाँ गई ?' इसका उत्तर उन्होंने यथार्थ पदार्थ-दर्शनसे परिणमित सम्यग्ज्ञानकी भूमिकामें देखते हुए यों दिया कि `पदार्थकी तीनों कालकी पर्यायें पानीकी तरंगवत् अपने आपमेंसे उद्भव होती है और अपने आपमें विलीन होती है।'

⌘ जिनवाणी-प्रेम :

श्री सोगानीजी अपने आत्म-अन्वेषणकी अवधिमें बहुधा धर्मग्रन्थोंके अध्ययनमें खोये रहते थे। तदर्थ व नई-नई किताबें खरीदते रहे, जिससे इनका संग्रह बड़ा होता गया। उनके अध्ययनकक्षमें सत्साहित्यका विपुल भण्डार था। यद्यपि तत्त्वज्ञानके आत्मसात् हो जानेके पश्चात् उनका पढ़नेके प्रतिका झुकाव क्षीण होता गया था; तथापि पू. गुरुदेवश्रीके प्रवचनोंके प्रकाशन आदि तो उनके पास नियमित आते रहते थे । इस प्रकार निरन्तर वृद्धिगत होते सत्साहित्यके लिए किरायेके छोटे-से घरमें जगह बनानेमें उनकी धर्म-पत्नीको बड़ी असुविधा होती थी। तथापि ऐसे संयोगोंमें वे अत्यंत भावुक होकर कहते `यही तो मेरी पूँजी है। बच्चोंके लिए यही तो विरासतमें छोड़कर जाऊँगा।' ...`आचार्योंके इन्हीं शास्त्रोंसे तो आनंदरस बूँद-बूँद कर टपकता है।'

प्रत्यक्ष सत्श्रुतयोगमें उनके नेत्र पूज्य गुरुदेवश्रीके मुखमण्डल पर ही टिके रहते और वे श्रीगुरुके श्रीमुखसे निर्झरित तत्त्वामृतको स्थिर उपयोगसे इतनी एकाग्रतासे अवधारते रहते कि उनके अगल-बगलमें कौन बैठा हुआ है उसका उन्हें भान तक नहीं रहता था।

⌘ प्रचण्ड पुरुषार्थका अवसर :

सन् १९६१ का वर्ष श्री सोगानीजीके लिए सर्वाधिक हादसों भरा रहा। इसी वर्ष उनके पिताश्रीका देहांत हो गया; और उसीके चंद महिनों बाद उनके चाचाश्री हेमचंद्रजी, जिनका उनकी शिक्षा-

दीक्षामें विशेष रुचि व योग रहा था, का भी देहावसान हो गया; और इसी वर्षमें उन्हें क्रूर नियतिका एक और झटका लगा जिससे उनके शरीर छूटने जैसा योग हो गया था। लेकिन धर्मात्माओंके लिए तो ऐसे प्रसंग महोत्सव स्वरूप होते हैं।

श्री सोगानीजी एक दिन शामको घर लौट रहे थे। उनके हाथोंमें एक बैग था। उसमें रुपये होनेके भ्रमसे कुछ असामाजिक तत्त्वोंने उनके पेटमें ९ इंच लम्बा छुरा भोंक दिया। वे वहीं गिर पड़े। अत्यधिक रक्तस्त्रावसे उनकी स्थिति गम्भीर और विशेष चिंताजनक हो गयी। अस्पतालमें डॉक्टरोंको आसानीसे उनकी नब्ज (Pulse) हाथ नहीं आ रही थी। तत्काल शल्यक्रिया करनी पड़ी। यद्यपि शल्यक्रिया सफल रही तथापि कुशल डॉक्टरोंकी कई सप्ताहोंकी यथोचित सार-संभालसे उन्हें स्वास्थ्य लाभ संभव हो सका। परन्तु उनके परिणामोंमें किसी प्रकारकी विह्वलता या आकुलताकी गंध तक नहीं दिखलाई देती थी। उनके परिणाम पूर्ववत् ही अत्यन्त सहज, स्वस्थ व शांत रहे। मानो उन्हें सर्वांग समाधान वर्तता हो और आत्मप्रत्ययी सहज पुरुषार्थ ऐसे विकट क्षणोंमें अत्यन्त वर्धमान हुआ हो परिणामत: पूर्व निबंधित शेष कर्मराशिने अपनी पराजय अंगीकार कर, उस बे-जोड़ पुरुषार्थीके लिए शीघ्र मोक्षगमनका मार्ग प्रशस्त कर दिया हो।

उक्त घटनाने श्री सोगानीजीको विशेषरूपसे आत्मकेन्द्री बना दिया। अब तो वे यथाशीघ्र दायित्व बंधनसे विमुक्त होकर पूर्णत: मोक्षसाधनामें लीन हो जाना चाहते थे। उनकी ऐसी पूर्व भावित भावना अब विशेष बलवती हो गई। जिनधर्मके सत्स्वरुपके सम्बन्धमें उनका अनुभवज्ञान गहनसे गहनतर हो गया। सहजांदसे बाहर झाँकना अब उनके लिए अग्निदाह-सा दु:खद हो गया। यात्राके अंतिम पड़ाव पर आत्मशांतिकी छाया उनके आसपास घनिभूत होने लगी।

प्रतिक्षण वर्धमान होती उनकी आत्मपरिणतिको अब अनात्मभाव अत्यन्त बोझरूप लगते। वे भौतिक संसारकी उस सीमा तक पहुँच चुके थे जहाँसे उसपार छलांग लगाना संभव हो जाता है। अंतर चेतनाके सारे कक्ष यथोचित खुल चुके थे। मोक्षके महा द्वार पर दस्तक पड़ रही थी। देश-कालकी सीमाएँ टूटने लगी और वे पल, प्रति पल निर्वाणपथकी ओर अग्रसर होते रहे। किन्तु यह सब उनके भीतर घट रहा था। बाहरकी दिनचर्यामें कोई व्यतिक्रम नहीं था। पर्यायका कार्य पर्याय द्वारा सम्पादित हो रहा था।

⌘ मुक्तिदाताके अन्तिम दर्शन :

श्री सोगानीजी मानों अपने नश्वर शरीरसे बंधनमुक्ति पूर्व अपने मुक्ति नियंता, मुक्तिनाथ, निष्कारण करुणा सागरके प्रति साक्षात् श्रद्धा-सुमन समर्पित करने और उनकी पवित्र चरणरजको अन्तिमबार अपने मस्तकपर चढ़ानेके अभीष्टवश, मई १९६४ में `दादर' में समायोजित पू. गुरुदेवश्रीकी मंगलकारी ७५ वीं जन्म जयंतीके प्रसंगपर सपरिवार बम्बई पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपने मुक्तिदाताके अन्तिम दर्शन किए और श्रीगुरुके परम उपकारके प्रति कोटि-कोटि आभार स्वीकारते हुए, भावाँजलि समर्पित की। और वहाँसे लौटनेमें वे अपनी धर्मपत्नीको अजमेर छोड़ते हुए, छ जून १९६४ को कलकत्ता आ गये। उस दिन वे अत्यन्त शांत और प्रकृतिस्थ दिखाई दिये, स्वस्थ और प्रसन्न।

⌘ चिर विदाई :

दूसरे दिन ७ जून १९६४ को श्री सोगानीजीको वातावरणमें अस्वाभाविक गर्मी और घुटनका अनुभव हुआ। उन्होंने अपना पलंग सरका कर पंखेके नीचे करवा लिया। उनके सीनेमें हलका-हलका दर्द होता रहा परन्तु उन्होंने उस पर विशेष ध्यान नहीं दिया। सारे दिनका उपवास। `श्रीमद् राजचंद्र' ग्रंथ जो पिछले वर्षोंमें उनके लिए धार्मिक स्वाध्यायका आधारभूत रहा था-का परायण। आत्मघोलन

व शांतमुद्रा। संध्याको ५ बजे वेदनाका कुछ अधिक भान हुआ; फिर भी स्नान किया, मानो संसारसे प्रस्थानपूर्व जड़ शरीरकी शुद्धि कर लेनेका उपक्रम हो। संयोगवश उस समय घरमें केवल उनकी कनिष्ठ पुत्री कुमुदलता ही थी। पुण्यात्माको शरीर तो एक व्यर्थ बोझा-सा ही लगता था। कालका मानों सदैव स्वागत था। वस्तुत: पुण्यात्माके लिए तो मृत्यु एक बड़ा भारी महोत्सव-सा होता है। शांत शरीर बिस्तर पर पड़ा रहा और वे अपने स्वमें लीन हो चुके थे। परम पुण्यात्माको ऐसा योग बना कि अकस्मात् हृदयगतिने रुद्ध होकर आत्मार्थीके लिए, शरीरके इस व्यर्थ बोझसे मुक्त कर, वास्तविक मार्ग प्रशस्त कर दिया। डॉक्टर आया, पर उसके लिए करने जैसा कुछ नहीं रहा।

बिजलीकी तरह यह खबर चारों ओर फैल गई। किसीने कल्पना भी नहीं की थी कि इस प्रकार हटात दीप निर्वाण हो जाएगा। श्रद्धापूर्वक उनके पार्थिव शरीरको चन्दन-कपूर युक्त चिताकी भेट कर दिया गया । पीछे छूट गया पुण्यात्माका यश: शरीर।

⌘ श्रीगुरुके उद्‌गार :

पूज्य सद्‌गुरुदेवश्री कहानजी स्वामीके पास जब भी सोगानीजीके आकस्मिक निधनकी खबर पहुँची तो उन्होंने वैराग्यपूर्ण सहज भावसे अपने उद्‌गार प्रकट करते हुए कहा : `अरे ! आत्मार्थीने मनुष्य जन्म सफल कर लिया है। स्वर्गमें गये हैं और निकट भवी हैं।'

अनेक आत्मार्थियोंके जिज्ञासा भरे प्रश्न पत्र श्री सोगानीजीके पास आते थे; तादृश सोनगढ़ तथा बम्बईके प्रवासमें अनेक मुमुक्षुओंके साथ तत्त्वचर्चा होती थी; उन सबका वे यथोचित समाधान देते। इनमेंसे विशेष कर सन् १९६२-१९६३में हुई तत्त्वचर्चाको अनेक मुमुक्षुओंने लिख लिया था। सद्‌भाग्यसे वह (उक्त) सामग्री उन

मुमुक्षुओंके पास सुरक्षित थी; जिसे पुस्तकाकाररूपमें प्रकाशित करने हेतु पू. गुरुदेवश्रीकी स्वीकृति मिल जाने पर, उस सामग्रीको संकलित-संपादित करके 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' शीर्षकसे ग्रंथारूढ़ किया गया। जब इस ग्रंथकी छपाईका कार्य पूरा हो गया तो उसकी प्रति पू. गुरुदेवश्रीको देते हुए इस ग्रंथ हेतु आशीर्वाद स्वरूप उनके स्वहस्ताक्षरोंकी टिप्पणीकी याचना की तो उन्होंने ग्रंथके सतही अवलोकनपरसे लिखा कि : 'भाई न्यालचंद सोगानी आत्माना संस्कार सारा लईने देह छुट्यो छे।'

परंतु इस ग्रंथके तलस्पर्शी अध्ययनसे श्री सोगानीजीके 'अक्षरदेह' परसे पू. गुरुदेवश्रीको स्वर्गस्थ आत्माकी यथार्थ, उच्च, शुद्ध अंतर्दशाकी सुप्रतीति हो गई। और तदुपरांत तो वे अपने प्रवचनोंमें वारंवार श्री सोगानीजीकी आध्यात्मिक उपलब्धियों, उनके असाधारण पुरुषार्थ व मार्मिक शैलीकी मुक्तकंठसे सराहना करते रहे । कभी कभी तो वे भावविभोर होकर यहाँ तक कहते कि :

'श्री सोगानी वैमानिक देवमें गये हैं, वहाँसे निकलकर मनुष्यभव प्राप्त कर झपट करेंगे; और वे मेरे पहले मुक्तिमें जायेंगे । और जब मैं तीर्थंकरभवमें (-चौथे भवमें) मुनिदीक्षाके समय सर्व सिद्धोंको नमस्कार करुँगा तब मेरा नमस्कार उन्हें भी प्राप्त होगा।'

धन्य धन्य हैं ऐसे गुरु !! धन्य हैं ऐसे शिष्य !!

* वस्तुत: श्री निहालचंद्रजी सोगानीकी जीवनगाथा साधनासे सिद्धि तक छलांग लगानेका वृत्त है। कर्मयोग और अध्यात्मयोगकी संभवित साधनाका यह एक अनुपम उदाहरण है। जीवनयात्रा यदि बाह्य जगत्प्रति हो तो उसको समझना और रेखांकित करना आसान है किन्तु वे तो अंतर्जगत्के यात्री थे। उनकी उपलब्धियोंका यथार्थ मूल्यांकन, उस दशाको संप्राप्त अथवा उस दशासंप्राप्तिमें संलग्न

जीव ही कर सकता है, अन्य नहीं।

`द्रव्यदृष्टि-प्रकाश' ग्रंथमें संकलित अनेकों गंभीर आध्यात्मिक पत्र व सैकड़ों प्रश्नोत्तर, जिनधर्मके संबंधमें श्री सोगानीजीके तलस्पर्शी व अनुभवमयी ज्ञानके प्रमाण हैं। उनके श्रीमुखसे व समर्थ लेखनीसे सत् दर्शन और मोक्षमार्गके संबंधमें प्रकट होनेवाली सचोट वाणी ही उनकी थाती है। उनकी प्रज्ञाका यह प्रकाश-स्तम्भ भावी पीढ़ीका मार्गदर्शन करता रहेगा, ऐसा विश्वास है।

सत्पुरुषोंका प्रत्यक्ष योग जयवंत वर्तो !

-त्रिकाल जयवंत वर्तो !

संकलन व संपादन

- पूज्य भाईश्री शशीभाई

सौम्यमूर्ति पूज्य 'भाईश्री'का संक्षिप्त आध्यात्मिक जीवन परिचय

सामान्यतः किसी भी साधारण मनुष्यका इतिहास या जीवनचरित्र नहीं लिखा जाता, परन्तु जो स्वयं पुरुषार्थ करके अपना इतिहास बनाते हैं यानी कि जन्म-मरणका छेद करके जीवनमुक्त होते हैं, उनका जीवनचरित्र लिखा जाता है, और उनकी यशगाथा सारे लोकमें फैलती है। ऐसे ही एक पुरुषार्थी संत आत्माका- ``पूज्य भाईश्री'' का जीवनचरित्र यहाँ पर प्रस्तुत है।

जंबुद्वीपके भरतक्षेत्रमें स्थित भारतदेशमें अनेक तीर्थंकर, आचार्य व ज्ञानी भगवंत होते रहे हैं। इनसे यह भूमि हर-हमेश पवित्र रही है। अनादिकालसे परिभ्रमण कर रहे अनेक जीव इस क्षेत्रमें साधना करके मोक्ष पधारे हैं। इस भारत देशके सौराष्ट्र प्रांतमें

सुस्थित सुरेन्द्रनगर नामके एक गाँवमें, संवत-१९८९ के मार्गशीर्ष शुक्ल अष्टमी, दि.२८-११-१९३३ के मंगल दिन एक प्रामाणिक सद्‌गृहस्थ श्री मनसुखलाल लघरचंद शेठके वहाँ ऐसे ही कोई पवित्र आत्माका आगमन हुआ। माताश्री रेवाबहनकी कोख खिल उठी। प्रभावशाली पुरुषके पुनीत आगमनसे किसे हर्ष नहीं होगा ?

वातावरण प्रफुल्लित व अनोखे आनंदोल्लाससे हर्षित हो उठा है। भरतभूमि फिर एकबार गौरवपूर्ण धन्यताका अनुभव कर रही है। माता-पिताके हर्षकी सीमा नहीं है। बालककी शांत व सौम्य मुखमुद्राको देखते हुए तृप्ति नहीं होती है। इस आत्माको देखकर हरकोई अनोखी शांतिका अनुभव कर रहे हैं। यह शूरवीर आत्माका आगमन अनन्त तीर्थंकर जिस मार्ग पर चले हैं, उस मार्ग पर चलनेके लिए हुआ है। अहो! धन्य है इस भूमिको! और धन्य हैं इनके माता-पिताको! फिर जन्म लेना ही न पड़े, इसके लिए जिसने जन्म धारण किया है। चंद्रकी चांदनी जिस तरह शीतलता फैलाती है और भूमिको श्वेत करती है, वैसे त्रिविध तापाग्निसे आकुल-व्याकुल होकर मृगजल पीनेके लिए दौड़ रहे क्लेशित आत्माओंको शीतलता प्राप्त करानेवाले और दोषकी कालिमाको धोकर पवित्र व श्वेत दशाकी प्राप्ति करानेवाले इस बालकका नाम भी 'शशीकांत' रखा गया।

⌘ बाल्यावस्था :

अपने मूल वतन राणपुर गाँवमें बालकुमार शशीकांतकी नयनरम्य चेष्टाएँ देखकर सभी मन ही मन मलक रहे हैं। स्वयंकी निर्दोष चेष्टाओंसे लोगोंके मन हरनेवाले इस बालकुमारका जीवन सानंद व्यतीत होने लगा है। अभी से यह बालकुमार नीडर, पापभीरु, गुण-ग्राही, स्वतंत्र विचारक और आदर्श विचारधारा रखता है। असाधारण बुद्धिमत्ताके कारण स्कूलमें प्रायः प्रथम या द्वितीय क्रम पर उत्तीर्ण हो रहा है। करीब ९-१०सालकी उम्रमें दादाजी द्वारा धार्मिक

संस्कारका सिंचन शुरू हुआ। वैष्णव कुटुम्बमें जन्म होनेके कारण रामायण, गीता, महाभारत, भागवत इत्यादि ग्रंथका पठन करने लगा। बहुत तेज़ स्मरणशक्तिके कारण देखते ही देखते इस बालयुवकने श्रीमद् भगवत् गीताके दो-तीन अध्यायके संस्कृत श्लोक तो कंठस्थ कर लिए। यह बालयुवक प्रत्येक कार्य चुस्तता व दृढ़ मनोबलपूर्वक कर रहा है। अरे ! यह तो अलौकिक आत्मा ! जो आत्माकी साधना करनेवाला है, वह सामान्य बालककी कोटिमें कैसे आयेगा ? बालककी चुस्तता व दृढ़ मनोबलके दर्शन हम निम्न लिखित प्रसंगसे करें।

गरमीका मौसम चल रहा है, आकाशमें सूर्य तेज़ धूपके साथ गरमी फैला रहा है। ऐसी तीव्र धूपमें स्कूलके मैदानमें आर.एस.एसकी परेड चल रही है। परेडके दौरान इस बालकका अत्यंत तृषाकी वजहसे कंठ सूखने लगा, फिर भी नियमका पालन चुस्ततासे करनेका दृढ़ निश्चय होनेसे यह बालक किसीको बोला नहीं। एक ओर चिलचिलाती धूप और दूसरी ओर कठोर परिश्रम, ऐसी परिस्थितिमें सूखा हुआ कंठ जैसे मानो पानीकी एक-एक बूँदके लिए पुकार कर रहा हो, तब ऐसेमें परेड करीब-करीब पूरी होनेके पहले बालक चक्कर खाकर गिर पड़ा, लेकिन अपनी चुस्तता व निश्चयको नहीं छोड़ा। देखिये ! इस बालककी चुस्तता और दृढ़ मनोबल !

कुमार शशीकांतकी स्वंतत्र विचारधारा व अनुभव प्रधानताके दर्शन भी निम्न प्रसंगसे करने योग्य है। १४ सालकी उम्र है, युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी जैसे महाप्रतापी सत्पुरुष राणपुरमें पधारे हैं। कुमार शशीकांतको उनके आत्मकल्याणकारी मंगल प्रवचन सुननेकी उत्कंठा जगी और प्रवचन सुनने जाता है। प्रवचनमें पूज्य गुरुदेवश्रीने फरमाया कि `देखो ! आत्मामें ज्ञान स्वयं हो रहा है, यह ज्ञान वाणीसे उत्पन्न नहीं होता, नाहि गुरुसे उत्पन्न होता

है, परन्तु स्वयं ही उत्पन्न हो रहा है' - यह बात सुनते ही `देखो' ऐसा शब्दप्रयोग हुआ था, इसलिए यह कुमार शशीकांतने अंदरमें देखा तो उसे मालूम पड़ा कि, `सचमुच, मेरा ज्ञान भी स्वयं, सहज उत्पन्न हो रहा है।' देखा ! पूर्वसंस्कारवश अनुभवपद्धति कैसे जागृत हो जाती है! ऐसे-ऐसे तो अनेक सद्‌गुण संपन्न कुमार अब युवावस्थामें प्रवेश करता है।

⌘ युवावस्था :

असाधारण बुद्धिमत्ताके कारण पढ़ाईमें बहुत-बहुत तरक्की करनेके विचार आने लगे और एफ.आर.सी.एस (लंडन) डॉक्टर बननेकी तीव्र महत्त्वाकांक्षा चलने लगी। परन्तु प्रारब्ध कुछ और ही था ! (उन्हें तो भवरोगको मिटानेका वैद्य बनना था !) इसलिए उन्हें कुटुम्बकी आर्थिक परिस्थिति अत्यंत कमज़ोर होनेसे युवावयमें प्रवेश होते ही मैट्रीक तक अभ्यास पूर्ण करके पिताजीके व्यवसायमें जुड़ना पड़ा। उनकी कार्यकुशलता, बुद्धिमत्ता व प्रामाणिकताको देखकर उनके एक स्नेही द्वारा बम्बई जैसे बड़े प्रवृत्तिक्षेत्रमें जानेकी प्रेरणा मिलने पर एक बड़े कमीशन एजंटके वहाँ नौकरीमें लग गये।

इसी अरसेमें बम्बईमें विरमगामके श्री दोशी किरचंद लक्ष्मीचंदकी सुपुत्री, चंद्रावतीके साथ उनकी सगाई हुई। इन्हीं दिनोंमें पांडुरंग शास्त्रीजीको सुननेका प्रसंग पड़ा और तत्त्वज्ञान सम्बन्धित रस जागृत हुआ। महात्मा निश्चलदासजी कृत श्री विचारसागर ग्रंथ पढ़नेमें आया, इस वांचनसे तत्त्वविचार और मंथन तीव्रतासे चलने लगा। अंतरंगमें ऐसी परिस्थितिके दौरान सम्यक्‌ज्ञानका अनुसरण करे वैसा दृष्टिकोण साध्य करनेका उनका अभिप्राय बना, वह इसप्रकार कि, `चाहे किसी भी प्रसंगमें उस परिस्थिति सम्बन्धित मेरा निर्णय यथार्थ ही हो, वैसा दृष्टिकोण मुझे प्राप्त कर लेना चाहिए।' इस विषयमें निरंतर चिंतन-मंथन चलने लगा।

शुरूसे ही आदर्शकी मुख्यतावाली विचारधारा, तत्त्वज्ञानका रस, कुलधर्मका अपक्षपात, मध्यस्थता, तथापि सांप्रदायिक धर्मका आकर्षण व अंधश्रद्धाका अभाव इत्यादि सद्‌गुण समेत जैनदर्शनके प्रति उन्हें किस प्रकार आकर्षण हुआ, यह भी दर्शनीय है।

एक वक्त बम्बईमें दुकान पर बैठे थे, तब साथमें काम कर रहे एक सद्‌गृहस्थने सामनेसे चलकर हाथ जोड़कर क्षमा माँगी। तब उन्होंने सआश्चर्य क्षमा माँगनेका कारण पूछा, तो उन्हें मालूम पड़ा कि जैनधर्ममें इसप्रकार सालभरमें एकबार जो-जो भूल हुई हो, चाहे नहीं हुई हो, इसके लिए क्षमा माँगी जाती है, तब सानंदाश्चर्य सहित जैनदर्शनके प्रति अहोभाव जागृत हुआ और आकर्षण भी हुआ।

तब उन्हें राणपुरमें बचपनका वह प्रसंग भी याद आया कि वहाँ भी जैनियोंके घरमें कैसी रीति-नीति होती है, वह प्रसंग तादृश्य हो गया। एकबार किसी जैनके घर जानेका प्रसंग पड़ा था, वहाँ रसोईके लिए कंडे इकट्ठे किये हुए थे, जब उसे जलानेके लिए लेते थे, तब चूल्हेमें डालनेसे पहले उसे झाड़ते थे कि कहीं उसमें

कोई जीव-जंतु तो नहीं है न ? या अगर हो तो निकल जाये। ये देखकर उनको ऐसा लगा कि जैनदर्शनमें छोटे से छोटे जीवकी भी हिंसा न हो, इसकी कितनी सावधानी रखी जाती है !! अहो ! पूतके लक्षण पालनेमें !

देखिये ! इस कहावत अनुसार जिनके द्वारा समस्त जिनशासनकी प्रभावना होनेवाली है, ऐसे इस पवित्र आत्माको गुणदृष्टि होनेसे दूसरेके गुण प्रति कितना प्रमोद आता है ! इसतरह जैनदर्शन और कुलधर्म (वैष्णवधर्म) की तुलना सहज होने लगी। बम्बईमें अतिशय कार्यभार व सख्त परिश्रमके कारण उनका स्वास्थय बिगड़ा, इसलिए बम्बई छोड़कर भावनगर आना हुआ और भावनगरमें एक संबंधीकी दुकान पर नौकरीमें लग गये।

अब, यहाँ भावनगरमें तत्त्वज्ञानके रसको पुष्टि नहीं मिलती थी इसकी क्षति महसूस होने लगी। किसीका सत्संग नहीं है और नाहि कोई तत्त्वज्ञानकी बात करनेवाला दिखता है, इसलिए मन उदास रहने लगा। परन्तु जिनके आत्माके परिभ्रमणका किनारा अब नज़दीक हो, उनसे सत्य आखिर कब तक दूर रहता? क्या भावनाके साथ कुदरत बंधी हुई नहीं है ? अरे ! अवश्य बंधी हुई है !

⌘ दिशाबोध :

एक ओर सत्संगका अभाव, स्वयंकी तत्त्वज्ञान सम्बन्धित रुचि-रसको आवश्यक पोषणका अभाव, दूसरी ओर अंदरमें सत्यकी खोज व सुखसे वंचित अंतरंग अतृप्त अंतरपरिणति, ऐसी स्थितिमें विधिकी किसी धन्य बेलामें एक दिन खुद दुकान पर काम कर रहे थे, तब पासमें पड़े एक ग्रंथ पर नज़र पड़ी, ग्रंथका नाम पढ़ते हैं - `श्रीमद् राजचंद्र'। जैनदर्शनमें प्रवेशका यह प्रथम कारण उन्हें आज मिल गया। यह प्रसंग मुक्तिकी दिशामें मंगलकारी बना। जिज्ञासापूर्वक ग्रंथके कुछएक पन्ने वे देखने लगे तो उन्हें लगा कि, यह तो

कोई तत्त्वज्ञान विषयक ग्रंथ है। फिर तो विशेष अभ्यास करने पर ग्रंथकार कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजीके वचनामृतोंसे वे अत्यंत प्रभावित होते गये। कृपालुदेवकी मध्यस्थताको देखकर उनका हृदय प्रफुल्लित हो उठा। स्वयंके तत्त्वज्ञानकी रुचिको पुष्टि मिलने लगी। फिर तो क्या कहना ! अंतरंगमें अतृप्त परिणतिको मानो जैसे कोई विश्रांतिका स्थान मिल गया !!

इस ग्रंथको पढ़नेके पश्चात् उन्हें ऐसा लगा कि, जैनदर्शनमें जीव और जड़ परमाणुका विज्ञान है और दोनों पदार्थके निमित्त-नैमित्तिक संबंधकी जितनी असर जीव लेता है, उतनी सुख-दुःखकी उत्पत्ति होती है। यदि इस सुख-दुःखकी समस्याका उपाय मिल जाये तो हमेशके लिए बहुत बड़ी उपलब्धि हो जाये, ऐसा उन्हें लगा। इस आकांक्षा सहित जैनदर्शनकी गहराईमें जानेका अत्यंत रस उत्पन्न हो गया। गुण-दोषकी चर्चा, पदार्थका वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे, नय, प्रमाणकी पद्धतिसे सुव्यवस्थित प्रतिपादनको देखकर उनके हृदयमें जैनदर्शनकी सर्वोत्कृष्टता अंकित हो गई। अनन्तकालसे चल रहे जन्म-मरण और इसके दुःख व क्लेशसे छूटनेका एक मात्र उपाय आत्मज्ञान है, इस बात पर ध्यान गया। अतः यदि ज्ञानी मिलते हो तो सातवें पाताल तक जानेके लिए मैं तैयार हूँ, इस अभिप्राय सहित कोई आत्मज्ञानीका सान्निध्य पाकर अपने सभी परिणामोंका निवेदन करके मार्गदर्शन पानेका सर्वप्रथम मंगल विचार उन्हें आया। कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजीके सत्संगके महत्त्व विषयक उन्हें यथार्थ मूल्यांकन आया और सत्संगकी तीव्र भावना रहने लगी। फिर तो कहावत है कि ``जहाँ चाह है, वहाँ राह है'' - वैसे उनकी भावना सफल हुई और एक धर्मप्रेमी मुमुक्षुके वहाँ सत्संगकी सुमंगल शुरूआत हुई।

❋ निज परमात्माके वियोगकी वेदना व तड़पन :

कृपालुदेव - ``श्रीमद् राजचंद्र'' ग्रंथका अत्यंत गहन अवगाहन चल रहा है, और इसमेंसे सुख-दुःखकी समस्याका उपाय मिलनेकी संभावना दिखने पर इस समस्याको सुलझानेके लिए उनका हृदय इसकी गहराईमें जाने लगा। सच्चा सुख कहाँ है ? दुःखकी निवृत्ति कैसे हो ? सर्व प्रकारसे दोषसे निवृत्त कैसे हुआ जाये ? ये जन्म-मरण क्यों ? जन्म-मरणका आत्यंतिक वियोग किस विधिसे हो सकता है ? ऐसे-ऐसे अनेक प्रश्न उनके हृदयमें छा गये। ऐसी अंतरंग स्थितिके दौरान सत्संगकी शुरूआत हुई और हररोज प्रातःकाल करीब ४-०० बजे सत्संगमें जाना शुरू किया। एक ओर कृपालुदेवके ग्रंथका अध्ययन और दूसरी ओर अंतरंग परिणामोंकी ऐसी स्थिति !

सुबह ४-००बजे एकांतका समय है। कड़ाकेकी ठंडमें सारा विश्व भावनिद्रा व द्रव्यनिद्रामें सो रहा है, तब जन्म-मरणकी समस्याका उपाय खोजनेके लिए निकला हुआ यह धीर-वीर आत्मा, गंभीर व शांत चालसे चलते-चलते सत्संगमें जा रहा है। तब बगलके गाँवसे आधी रातको निकला हुआ एक किसान अपनी बैलगाड़ीमें शहरसे कूड़ा (खाद) इकट्ठा करने चला आ रहा है। उसे देखकर उन्हें विचार आया कि, इतनी तुच्छ वस्तुकी प्राप्तिके लिए भी यह किसान कितना परिश्रम व प्रतिकूलताओंको भोगता है ! जब कि मैं तो जगतका सर्वोत्कृष्ट कार्य करने निकला हूँ तो इसके लिए चाहे कितनी भी कीमत यदि चुकानी पड़े तो इसमें क्या विशेषता है ? बस! फिर तो इस-इस प्रकारकी मंगल सुविचारणा और आँखसे अविरत बहती अश्रुधाराको कौन रोक सके ? कोई रोकना भी चाहे तो रोक नहीं सके ऐसी हृदय द्रावक वेदनाके बीच अंतरंगका शुद्धिकरण हुआ और हृदयसे तीव्र वेदना सहित ध्वनि निकल पड़ी...

''हे प्रभु ! हे प्रभु ! शुं कहुं, दीनानाथ दयाळ,
हुं तो दोष अनंतनुं, भाजन छुं करुणाळ।।
अनन्तकाळथी आथडयो, विना भान भगवान,
सेव्या नहि गुरु सन्तने, मूक्युं नहि अभिमान।।
अधमाधम अधिको पतित, सकल जगतमां हुंय,
ए निश्चय आव्या विना, साधन करशे शुंय ?''

- श्रीमद् राजचंद्र

'निज दोषका अत्यंत पश्चाताप हुए बिना पवित्रताकी शुरूआत नहीं होती' - इस सिद्धांत अनुसार अनन्तकालसे चले आ रहे निजदोषका अत्यंत तीव्र पश्चाताप व निज परमात्मस्वरूपके वियोगकी वेदनासे पीड़ित उनका हृदय तीव्र आकुल-व्याकुल रहने लगा। इसप्रकार इस वेदनासे संसारकी उपासनाका अभिप्राय मिटा और अंतःकरणकी अत्यंत शुद्धि हुई।

❋ पूर्णताका लक्ष्य :

उपरोक्त वेदनाके कारण उत्पन्न हुई उदासीनतासे बाहरमें कहीं पर रस नहीं आता, जिसके कारण जीवन रसविहीन हो गया। एकमात्र आत्मकल्याण कैसे हो ? बस! एक ही धून लगी रहती। उनके अंतरंगको देखे तो कुटुम्बकी कमज़ोर आर्थिक परिस्थिति होने पर भी अनेक प्रकारकी भौतिक सुख सम्बन्धित लौकिक महात्वाकांक्षाओंका हृदयसे त्याग हुआ। उस वक्त एक क्षणके लिए भविष्यकी चिंताका विचार आ भी गया तो इस पुरुषार्थी जीवने उसे ठोकर मार दी और शुद्ध अंतःकरणसे आत्मकल्याण कर ही लेना है, ऐसे निश्चयका जन्म हुआ और अंतरंगमें एक लयसे इस महान् सिद्धिकी उपलब्धिके लिए कार्यशील हो गये। देखिये ! कैसा अद्भुत संवेग प्रगट हुआ है !! जिसप्रकार बादलको देखकर सूर्य वापिस नहीं मुड़ता और नदीका पाानी बीचमें पड़े हुए पत्थरकी छाती चीरता हुए आगे बढ़ता

है - वापिस नहीं मुड़ता, वैसे दृढ़ निर्धारपूर्वक चल रहे इनके परिणामोंको अब विश्वकी कोई भी ताकत रोक सकती है क्या?

जीवनमें सिर्फ एक ही लक्ष्य / ध्येय हो गया। जीवनमें संपूर्ण शुद्धिकी उपासना करते-करते चाहे कैसी भी अग्नि परीक्षामेंसे गुज़रना पड़े फिर भी आत्मकल्याण शीघ्रतासे कर ही लेना है, ऐसा भाव बार-बार रहा करता है। असाधारण निश्चय शक्ति एवं परमार्थके लिए प्रतिकूल प्रियजनोंके विपरीत अभिप्रायके सामने अटल रहनेकी, नाहिंमत नहीं होनेरूप वज्रसमान हिंमतके साथ लड़ना और फिर भी निर्दोष वृत्तिके साथ अनादिसे चले आ रहे अज्ञान-अंधकारसे निकलनेके लिए इनकी खोज शुरू हुई। ऐसे असाधारण निश्चयके साथ आगे बढ़ रहा यह आत्मा न तो सिर्फ उलझनमें उलझा रहता है, नाहि प्रमाद करता है, बल्कि अत्यंत धीरज व गंभीरता समेत मार्ग ग्रहण करनेके प्रयत्नमें लगा है।

देखिये ! कैसे असाधारण गुण प्रगट हुए हैं ! मुमुक्षुता देदीप्यमान होकर झलक उठी है ! जिसको छूटना ही है, उसे कोई नहीं बाँध सकता। - इस सिद्धांत अनुसार इस भव्यात्माके अद्‌भुत गुणोंको देखते-देखते हृदय झुक जाता है। अनन्तकालमें जो सत्पात्रता प्राप्त नहीं हुई थी, वह सत्पात्रता प्रगट हुई! इसप्रकार सम्यक्‌दर्शनको रखनेका पात्र तैयार हो गया !!

⌘ निज दोषका अपक्षपातरूप अवलोकन :

``निर्दोष होनेकी प्रथम सीढ़ी अपने दोषको कबूल करना वह है'' - इसी सिद्धांत अनुसार अडोल वज्र जैसी हिंमतके साथ निर्दोष होने निकला यह आत्मा अब अपने दोषोंका अपक्षपातरूपसे अवलोकन कर रहा है और इन दोषोंको मिटानेके लिए अमलीकरण भी कर रहा है। इन दिनों कृपालुदेवके ग्रंथका गहन चिंतन और मंथन चल रहा है। प्रत्येक बातके यथार्थ निश्चय हेतु चलते हुए परिणामका

अवलोकनपूर्वक प्रयोग पद्धतिसे कार्य चल रहा है। देखा ! कैसी आत्मसूझ आयी है। अनुभव पद्धतिसे कार्य करनेकी अंतरंगसे सूझ ऐसे मोक्षार्थीको ही आती है। अब बाहरमें कृपालुदेवके ग्रंथसे मिलता मार्गदर्शन और अंदरमें प्रयोग पद्धति, दोनोंसे अनेक प्रकारके पूर्वग्रह और विपर्यास कमज़ोर होने लगे। फिर तो इस अपक्षपातरूप दोषोंके अवलोकनके सातत्यसे अंदरमें ज्ञानकी निर्मलता बढ़ती गई, बढ़ती गई... !

⌘ सत्पुरुषमें परमेश्वरबुद्धि :

परम तारणहार कृपालुदेवका आत्मकल्याण हेतुभूत मार्गदर्शनका मूल्यांकन अतिशय बढ़ता चला। उन्हें उपकारी श्रीगुरुकी छविमें परमात्माके दर्शन हुए। श्रीगुरुके भौतिक देहकी छवि - मनुष्याकृति गौण होकर भावात्मक परमात्माके दर्शन होते ही हृदय अश्रुसे सिक्त हो गया ! अनन्तकालसे भटक रहे इस आत्माके कल्याण हेतु ही न जाने इस ग्रंथकी रचना हुई होगी, ऐसा बार-बार उन्हें लगने लगा। इसप्रकार कृपालुदेवको केवल एक सत्पुरुषकी नज़रसे नहीं देखा बल्कि एक तारणहार परमात्मारूप देखने लगे। हृदयसे पुकार उठती है, अहो ! ये पुरुष इस विषमकालमें मेरे लिए परम

शांतिके धामरूप व कल्पवृक्ष समान हैं। अहो ! अधिक क्या कहे ? मेरे लिये तो ये दूसरे श्री राम और श्री महावीर ही है ! इसप्रकार इन्हें कृपालुदेवकी भक्तिमें लीन होकर उनके लक्षणोंका चिंतन चलने लगा और उनकी मुखाकृतिका हृदयसे अवलोकन होने लगा। अहो ! ज्ञानियोंके हृदयमें रहे हुए व निर्वाणके लिए मान्य करने योग्य परम रहस्यको वे प्राप्त हो गये !

एक मृत्युसे बचानेवालेका उपकार भी विस्मृत नहीं होता, तो जो अनंत जन्म-मरणसे बचाये उनके प्रति परमेश्वरबुद्धि क्यों नहीं आयेगी ? ज़रूर आयेगी। इसतरह सर्व शास्त्रोंके व सर्व संतके हृदयमें रहे मर्मरूप बीजकी प्राप्ति हुई अर्थात् प्रथम समकितकी प्राप्ति हुई। उक्त परिणामसे ज्ञानमें निर्मलता आने लगी, आत्मरुचि तीव्र होती चली और अंदरसे आत्माको अनन्तकालमें जो नहीं प्राप्त हुई थी, वैसी अपूर्व जागृति आयी। यह जागृति अपूर्व है ऐसी सम्यक् प्रतीति आयी।

⌘ अंतर खोज :

उपरोक्त निर्मल परिणामके साथ-साथ आत्मरुचि तीव्र होती चली। स्वरूप प्राप्तिकी तीव्र जिज्ञासा वश उत्पन्न वैराग्यने एक नये स्तरमें प्रवेश किया। निज परमात्मस्वरूपकी अंतर खोजमें यह भव्य आत्मा इतना तो खोया-खोया रहने लगा कि बाह्य व्यवहारमें और खाने-पीने इत्यादि नित्यक्रममें लक्ष भी नहीं रहता था। वैराग्यके कारण उदासीनतामें इतना रहने लगा कि खाते वक्त क्या खा रहा है ? उसका खयाल भी नहीं रहता था। खानेमें कौनसी चीज़ पूरी हो गई ? उसका भी खयाल नहीं रहता था। पहनावेमें और रहन-सहनमें इतनी तो सादगी आ गई कि घरवालोंको ऐसी दहशत होती है कि कहीं जैनधर्मकी दीक्षा तो नहीं ले लेगा ? अहा ! धन्य है यह उदासीनता !

आत्मसाधना करनेके लिए निकले इस आत्माको संसारमें सुहायेगा भी क्या ? जैसे हंसको मोतीका चारा करनेमें ही रस है; वैसे साधक आत्माको निज स्वरूपके अलावा अन्य कहीं भी रस नहीं आता। जहाँ सुखकी सहेली और अध्यात्मकी जननी उदासीनता मौजूद हो, वहाँ सत्य सुख और आत्मानुभव आखिर कितने दूर रहेगा ? अर्थात् अब तो वह अवश्य प्रगट होगा।

⌘ स्वरूप निश्चय :

अहो ! जिसके आधारसे अनन्तकालके सुखकी प्राप्ति होनेवाली है, जिसके आधारसे अनन्तकालसे चली आ रही जन्म-मरणकी श्रृंखला टूटनेवाली है; और जिसके आधारसे अतृप्त आत्मा परितृप्तताको प्राप्त होगा, ऐसे निज स्वरूप प्राप्तिकी तीव्र जिज्ञासावश उत्पन्न वैराग्य एवं उदासीनतासे यह आसन्न भव्य जीवके ज्ञानमें निर्मलता बढ़ती चली। ज्ञानमें स्वभाव और विभाव जातिकी परख करनेकी क्षमता प्रगट हुई। सर्व प्रकारके विभावभाव आकुलतारूप, मलिनतारूप और विपरीत स्वरूप भासित होने लगे। चलते हुए ज्ञानके साथ बार-बार विभाव भावका मिलान चल रहा है और इसके नतीजेमें ज्ञान बिलकुल अनाकुल, पवित्र और अविपरीत स्वरूप भासित होने लगा। इसतरह अंतर खोजके साथ चल रहे अवलोकनसे जातिकी परख आनी शुरू हुई। ऐसेमें कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रके सातिशय वचनयोगके लिए गौरव समान धन्य दिन आ पहुँचा ! कि जिस दिन अंतरंगमें निज परमात्माका स्पष्ट अनुभवांशसे पता लग गया। चलती हुई ज्ञान पर्यायमें ज्ञान सामान्य / वेदनके आधारसे अखंड एकरूप अनन्त ज्ञान व अनन्त सुखके सामर्थ्यरूप सहज स्वरूपका भावभासन हुआ। लौकिक समुद्रको तो तलवा होता है, लेकिन ये निज सुख समुद्रको कि जिसे तलवा ही नहीं है, इसे देखते ही पुरुषार्थने उछाला मारा। निज सिद्धपदका साक्षात् अस्तित्व ग्रहण

होनेसे निज स्वरूपकी अपूर्व महिमा चालू हो गई। गुण निधानकी अनन्य रुचिका उछाला स्वरूप सन्मुखताके पुरुषार्थपूर्वक शुरू हुआ। जिसके कारण उदयभावमेंसे उपयोग बार-बार छिटक-छिटक कर स्वरूपके प्रति आने लगा।

इस प्रक्रियाने दिन-प्रतिदिन वेग पकड़ा। संवेग और निर्वेद - दोनों प्रकारके परिणाममें अप्रतिम ज़ोरके कारण स्वरूपलक्षके परिणामपूर्वक निज परमात्मपदकी धून चढ़ गई और पुरुषार्थका वेग फाटफाट चलने लगा। जैसे मानो अंदरसे पुरुषार्थका बंबा फटा न हो ! अनन्तकालसे सुखके लिए बाहर भटक रहे उपयोगको विश्रांतिका स्थान मिल गया। जन्म-मरणकी जटिल समस्याका निवारण हुआ । फिर तो विश्वमें ऐसी कौनसी शक्ति है कि, जो इस पुरुषार्थको रोक सके या उपयोगको निज परमात्मासे अलग रख सके ? निज स्वरूपसे अन्य-अलग नहीं रह सकती। वर्तमान पर्यायने स्वरूपके साथ अनन्य होनेके लिए पूरी शक्तिसे पुरुषार्थ उठाया।

⌘ आत्मसाक्षात्कार :

इन्हीं दिनोंमें श्री दीपचंदजी कासलीवाल कृत `अनुभवप्रकाश' ग्रंथ इनके हाथ लगा। अब इसमें रहे वचन अनुसार स्वरूप लक्ष सहित भेदज्ञानका प्रयोग चल रहा है। `अनुभवप्रकाश' ग्रंथके गहन अभ्यासपूर्वक रसास्वादन करके ज्यों एक पानीदार अश्व उसके मालिकके एक ही इशारे पर तेज़ रफतारसे दौड़ने लगता है, त्यों इस पूर्व संस्कारी आत्माके अंतरंग परिणमनमें अप्रतिहत भावसे पुरुषार्थकी धारा बहने लगी।

२१ सालकी उम्र है। बाहरका दिखाव एकदम साधारण होने पर भी भीतरमें इस आत्माको अब निज परमात्मपदका पता लग चुका है, यह किसीके अंदाजमें आना भी मुश्किल है। १०० रुपये तनखाहकी नौकरी करते हुए भी इस भव्य आत्माको ऐसा लगता

है कि `मैं परमेश्वर हूँ' और `तीनलोकका नाथ हूँ' अंतरंग परिणति पलट गई और स्वरूप सन्मुखताके पुरुषार्थपूर्वक भेदज्ञान धारावाहीरूपसे चलने लगा। वह कैसे ? कि,

पूर्वकर्म अनुसार शुभाशुभ भाव और क्रमशः उदयके प्रसंग हैं; उन सबसे मैं ज्ञानमय होनेसे भिन्न हूँ - ऐसा समभावपूर्वक - स्वका ज्ञानरूप वेदन करनेका पुरुषार्थ चल रहा है। प्रति क्षण, प्रसंग - प्रसंग पर इस प्रकारका पुरुषार्थ चालू है। ज्ञानमें स्व-अस्तित्वका ग्रहण वेदनपूर्वक होनेसे चिद्‌रस उत्पन्न हुआ यह चिद्‌रस सहजरूपसे परिणतिमें मिला। परिणति उपयोगको बार-बार अपनी ओर खींचने लगी। - वारंवार इसी भेदज्ञानके अभ्यासके फलस्वरूप निर्विकल्प स्वरूपके आश्रयसे निर्विकल्प शुद्धोपयोग उत्पन्न हुआ और आत्माके प्रदेश-प्रदेशसे स्वसंवेदनज्ञान और अपूर्व आनंदका अनुभव हुआ...! जन्म-मरणकी श्रृंखला टूट गई, और परिणतिमें आनंदकी बाढ़ आयी जिसके साथ अनादिकालसे कर्तृत्वके बोझ तले दबी हुई परिणति मुक्तताका अनुभव करने लगी। अनुपम अमृत आस्वादसे परिणति तृप्त हुई। अहो ! धन्य है इस अज़ोड पुरुषार्थको ! धन्य है इनकी पवित्र साधनाको !

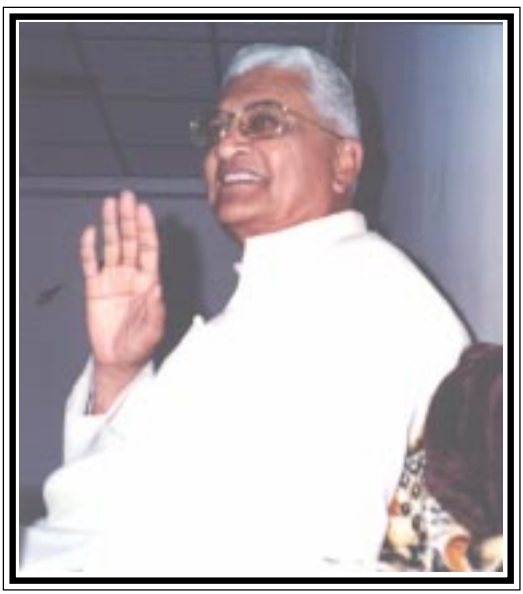

⌘ युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं अन्य धर्मात्माओंका प्रत्यक्ष समागम :

सुवर्णपुरी सोनगढ़में पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा उपदिष्ट प्रवचनोंके संकलनको प्रकाशित कर रही मासिक पत्रिका `आत्मधर्म' के ४-५ अंक किसी मुमुक्षु द्वारा मिले उसका अभ्यास किया। जिससे पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रत्यक्ष समागम करनेकी प्रेरणा हुई। तत्पश्चात् सोनगढ़में पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन सुननेका प्रथम प्रसंग बना। प्रवचनके बाद हुआ ऐसा कि, पूज्य गुरुदेवश्रीके पूछने पर इनके साथमें जो मुमुक्षुभाई थे, उन्होंने इस तरह पहचान करवाई कि `ये भाई वैष्णव है, लेकिन जैनधर्ममें अच्छा रस रखते हैं' - यह सुनते ही पूज्य गुरुदेवश्री बोले ``हमारे यहाँ तो कोई वैष्णव भी नहीं है और नाहि कोई जैन है, हमारी दृष्टिमें तो सब आत्मा ही आत्मा है।'' ये समदृष्टि भरे पूज्यश्रीके वचन सुनकर, उनके प्रति आकर्षण बढ़ा और बादमें प्रवचन सुननेका प्रसंग बढ़ता गया। प्रथम ४-५ प्रवचन परीक्षादृष्टिसे और चिकित्सावृत्तिसे सुने, जिससे इस निष्कर्ष पर आये कि `ये तो कोहिनुर हीरा है, इसमें परीक्षा करनेकी ज़रूरत ही कहाँ है!' फिर तो पूज्य गुरुदेवश्रीका आत्मज्ञानीके रूपमें स्वीकार होने पर अधिक से अधिक उनका सत्संग मिले, ऐसी भावना रहने लगी। पूज्य गुरुदेवश्रीके जिनमार्ग प्रभावनाके उदयको देखकर इनका भी ऐसा अभिप्राय बना कि, `यदि इस अलौकिक जग-हितकर मार्गकी प्रभावना करनेमें `पेट पर पाटा बाँधकर अर्थात् (खाना कम खाकर भी समर्पण करना पड़े) तो भी मंजूर है, लेकिन प्रभावना करनी चाहिए' देखिये तो सही ! इन्हें कैसी अद्‌भुत मार्गभक्ति प्रगट हुई है !!

पूज्य गुरुदेवश्रीसे आत्मीयता बढ़ती चली जिसमें स्वयंकी परिणतिके रसको पुष्टि मिल रही थी। यह देखकर उनके साथ

कईबार एकांतमें चर्चाका प्रसंग बनने लगा। दो ज्ञानीपुरुषके बीच कैसी ज्ञानगोष्ठि चलती होगी !! पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचनके दौरान वात्सल्यपूर्ण संबोधन और खास सूक्ष्म विषयके स्वाध्याय वक्त एक-दूसरेका स्मरण - ये इन दोनोंके बीच रहे अद्वितीय प्रेमकी प्रतीति कराता है। एक प्रभावशाली युगपुरुषके प्रेम सानिध्यमें सुदीर्घकालीन योग संप्राप्त होनेसे `सोनेमें सुहागा' जैसी परिस्थिति बन गई।

पुनः जिन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीका दिव्य वाणीके प्रथम चमत्कारिक स्पर्शसे ही विश्वकी उत्तमोत्तम वस्तुकी प्राप्ति कर ली थी, ऐसे पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीके समागममें आना हुआ। पाँच साल तक इनके घनिष्ट परिचयमें रहे, जिसमें पूज्य सोगानीजीकी उग्र अध्यात्म परिणतिके उन्होंने बहुत समीपतासे दर्शन किये और अपनी अध्यात्मदशाको आविर्भूत किया। इस दृष्टिकोणसे पूज्य सोगानीजीका भी उपकार भासित होता था। पूज्य सोगानीजीकी चिर विदाईके बाद, उनके पत्रों और तत्त्वचर्चाका संकलन करके `द्रव्यदृष्टिप्रकाश' जैसे अध्यात्मके उच्च कोटिके ग्रंथका उन्होंने प्रकाशन किया। इस तरह पूज्य सोगानीजी जैसे एकावतारी, अद्वितीय महापुरुषके अक्षरदेह द्वारा उनकी तीव्र ज्ञानदशाका मुमुक्षु समाजको दर्शन कराकर मुमुक्षु समाज पर बहुत बड़ा उपकार किया।

बादमें पूज्य गुरुदेवश्रीकी सभामें धर्मकी शोभारूप पूज्य बहिनश्री चंपाबहिनके प्रत्यक्ष परिचयमें रहनेका सौभाग्य भी उन्हें संप्राप्त हुआ। पूज्य बहिनश्रीकी सेवा, भक्ति व समर्पणका अपूर्व लाभ भी उन्होंने लिया। इस दुषमकालमें कि जहाँ एक धर्मात्माका योग होना भी मुश्किल है, वहाँ इस भव्यात्माको तीन-तीन धर्मात्माओंका प्रत्यक्ष समागम मिला, यह इनकी सत्संगकी अलौकिक भावनाका ही फल है। इस तरह सारा जीवन प्रगाढ़ सत्संग एवं ज्ञानियोंकी भक्तियुक्त बना।

⌘ प्रभावना योग :

पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रभावना योगको देखकर स्वयंको जो प्रभावना संबंधित भावना थी उसे सर्व प्रकारसे उन्होंने साकार की। जिसमें मुख्यतः श्री सीमंधरस्वामी जिन मंदिर - भावनगर, श्री परमागम मंदिर - सोनगढ़, श्री नंदीश्वर जिनालय - सोनगढ़, जैसे जिनमंदिरके निर्माणकार्यमें गुप्त रहकर अपूर्व भक्तिपूर्वक समर्पण किया। तद्उपरांत पूज्य गुरुदेवश्रीकी भावि पर्याय - तीर्थंकर सूर्यकीर्ति भगवानकी स्थापना अनेक मंदिरोंमें करवाकर पूज्य बहिनश्री चंपाबहिनकी भावनाको मूर्तिमंत स्वरूप दिया।

तथापि उनकी प्रेरणासे और पूज्य गुरुदेवश्रीकी सम्मतिपूर्वक शास्त्र प्रकाशनार्थ `श्री वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट,' भावनगर की स्थापना हुई। जिसमेंसे अभी तक लाखों ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं, तद्उपरांत वर्तमानमें प्रकाशित हो रहे हैं।

इसके अतिरिक्त उन्होंने विविध आचार्यों व ज्ञानियों द्वारा लिखित करीब १०० शास्त्रोंका, जैसे कि श्री समयसार, श्री प्रवचनसार, श्री नियमसार, श्री परमात्मप्रकाश, श्री मोक्षमार्गप्रकाशक, श्री समयसार कलशटीका, श्री अनुभवप्रकाश, श्री अष्टपाहुड, श्री पंचाध्यायी, श्री चिद्विलास, श्री सम्यक्ज्ञान दीपिका, श्री नाटक समयसार, श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत एवं अनेक पुराणोंका गहन अभ्यास करके उनके रहस्यको व मर्मको स्वयंकी मौलिक व सरल शैलीमें प्रवचन करके मुमुक्षुओंको अमृतपान कराया। निष्कारण करुणासे ३५-३५ साल तक उन्होंने समयसारजी, प्रवचनसारजी, अष्टपाहुडजी, कलशटीका, श्रीमद् राजचंद्रजी, अनुभवप्रकाश, चिद्विलास, बहिनश्रीके वचनामृत, गुरुदेवश्रीके वचनामृत, परमागमसार, स्वानुभूतिदर्शन इत्यादिक अनेक ग्रंथों पर समूहमें स्वाध्याय दिया। इन स्वाध्यायमें मार्गकी विधि, भेदज्ञान, प्रत्यक्ष सत्पुरुष व सत्संगका माहत्म्य, सत्पुरुषकी भक्ति, भावना,

दर्शनमोहकी भयंकरता इत्यादि अनेक विषयों पर प्रकाश डाला। तद्उपरांत सातिशय ज्ञानयोग और वचनयोग द्वारा मुमुक्षुजीवोंको वर्तमान भूमिकासे आगे बढ़कर मोक्षमार्ग पर्यंत पहुँचनेके क्रमका, स्वयंकी मौलिक अनुभवपूर्ण शैलीमें सुव्यवस्थित प्रतिपादन करके सारे मुमुक्षु जगत पर अविस्मरणीय उपकार किया है। वर्तमानमें करीब ५५०० प्रवचनोंकी ऑडियो केसेट तथा सी.डी. एवं विडीयो केसेट तथा सी.डी. भावनगरमें उपलब्ध है। भारतमें व विदेशमें भी जिनमार्गकी प्रभावनाका कार्य उन्होंने किया है।

इसके अलावा स्वयंकी प्रायोगिक शैलीमें `निर्भ्रांतदर्शनकी पगडंडी, प्रयोजन सिद्धि, तत्त्वानुशीलन-१-२-३, मुमुक्षुता आरोहण क्रम, सम्यक्दर्शनके सर्वोत्कृष्ट निवासभूत छः पदका अमृत पत्र, परिभ्रमणके प्रत्याख्यान, आत्मयोग' इत्यादि ग्रंथोकी रचना की तथापि `अनुभव संजीवनी' कि जिसमें स्वयंके अंतर मंथनसे स्फुरित वचनामृतोंकी समर्थ रचनासे जन्म-मरणकी जटिल समस्याका हल करनेके लिए

अति उपकारी मार्गदर्शन दिया है। तथापि उन्होंने `ज्ञानामृत' `द्रव्यदृष्टिप्रकाश' `परमागमसार' `भगवान-आत्मा,' `विधि विज्ञान,' `दूसरा कुछ न खोज,' `धन्य आराधना,' `अध्यात्म पराग,' `जिण सासणं सव्वं' इत्यादि अनेक ग्रंथ संकलन और विवेचनके रूपमें मुमुक्षु जगतको दिये हैं।

पूर्वमें अध्यात्ममूर्ति पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके पंच परमागम व अन्य परमागमों पर हुए विशिष्ट प्रवचनोंको ध्वनिमुद्रित केसेट परसे अक्षरसः पुस्तकारूढ़ प्रकाशित हो, वैसी उनकी विचारधारा और भावनाके फलस्वरूप `प्रवचन रत्नाकर' भाग १ से ११ प्रकाशित करनेमें उनका बहुमूल्य मार्गदर्शन व योगदान रहा।

पूज्य गुरुदेवश्रीके ४५ वर्षकी प्रवचनवर्षाके सारांशरूप, मक्खनरूप १४३ प्रवचनोंका प्रकाशन भी उन्हींके निर्देशनसे `प्रवचन नवनीत' भाग-१,२,३,४ (गुजराती) प्रकाशित हुए हैं।

⌘ श्रुत भक्ति :

महान दिगम्बर आचार्यों रचित अनेक प्राचिन परमागम जो उपलब्ध नहीं है, इसकी खोज हेतु श्री कुंदकुंद कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के अंतर्गत उन्होंने तामिलनाडु और कर्णाटकमें शास्त्रोंकी खोज की।

जर्मन युनिवर्सिटीके साथ इन प्राचिन शास्त्रोंकी खोज हेतु प्रयास किया एवं इग्लेंड, फ्रांस, जर्मनी, इत्यादिकी प्रसिद्ध लायब्रेरीयोंकी मुलाकात भी उन्होंने ली। भारतमें रही अन्य संस्थाओंके साथ मिलकर भी उन्होंने प्राचिन शास्त्र खोजका कार्य किया। तथापि उनकी भावना अनुसार यह कार्य श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट द्वारा आज भी चालू है।

श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, द्वारा हिंदी और गुजरातीमें प्रकाशित हो रही मासिक पत्रिका `स्वानुभूतिप्रकाश' को उन्होंने अपूर्व मार्गदर्शन

दिया। इस पत्रिकाके द्वारा जन-जन तक अध्यात्म तत्त्व पहुँचे ऐसी भावना पूर्वक इसका निःशुल्क वितरण भी उन्हींके अनुग्रहसे हो रहा है।

⌘ महा प्रयाण :

दि. २१-३-१९९९, चैत्र सुदी चौथ रविवारके दिन नित्यक्रम मुताबिक शामका सत्संग पूरा हुआ। किसीको मालूम न था कि आजकी रात कितनी क्रूर होगी। रात्रीको १:३० बजे हृदयमें दर्द शुरू हुआ। वेदना बढ़ती ही गई फिर भी परिवारवाले सामने थे, उन्हें अंदाज नहीं आने दिया। स्वयं अपने पुरुषार्थमें लगे रहे। उनके छोटे लड़के पंकजभाईसे पूज्य बहिनश्री व पूज्य गुरुदेवश्रीके बारेमें बातें करने लगे। भीतरमें आत्मस्वरूपके प्रति पुरुषार्थका ज़ोर बढ़ता चला, बाहरमें उपकारी श्री गुरुके स्मरण करते गये तथा व्यक्त करते गये। अशाता जैसे गौण हो गई और आत्मिक पुरुषार्थने बल पकड़ा। डॉकटरोंकी सूचना अनुसार उन्हें अस्पताल ले गये। अस्पताल पहुँचने पर परिस्थिति और भी बिगड़ी, तब अंतरमें खयाल आ गया था कि अब इस द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव छोड़नेकी घड़ी आ पहुँची है। तब इतनी तीव्र वेदना होने पर भी खुद ध्यानमें पद्मासनमें बैठ गये। नमस्कार हो ! ऐसे प्रचंड पुरुषार्थीको ! आजीवन की हुई अखण्ड आत्मसाधना अंतिम क्षणोंमें आविर्भूत हुई। असाता वेदनीको गौण करके इससे उपेक्षित होकर उपयोग अंतर्मुख हुआ। सामान्य ज्ञानवेदनके आविर्भाव पूर्वक प्रदेश-प्रदेशसे स्वसंवेदनका रसास्वादन हुआ। पुरुषार्थने स्वरूपका बहुत ज़ोरसे अवलंबन लिया, उपयोग सर्वसे भिन्न होकर स्वरूपमें ही लग गया। अनन्त कर्मोंकी निर्जरा हुई। बाहरमें डॉक्टर अपना काम करते गये, मुमुक्षु असहाय बनकर अपने प्राणसे भी प्यारे श्रीगुरुको देखते रहे ! अंततः चैत्र सुदि ५ दिः २२-३-१९९९, प्रातः ४:१५का समय है, उन्होंने मृत्यु महोत्सव

मनाकर अपना एक भव कम किया और अपने पूर्णताके ध्येयके समीप पहुँचे। मुमुक्षुओंके लिए नहीं चाहने पर भी यह भयानक परिस्थिति सामने आ गई और पंचमकालने मुमुक्षुओंके सर्वस्वको लूट लिया। भीतरमें देह और आत्माकी भिन्नताका अनुभव और बाहरमें भी देह और आत्माकी भिन्नतारूप वास्तविकता खड़ी हो गई। सब मुमुक्षु अपने-अपने प्राणकी आहुति देने तैयार थे कि शायद इसीके बदलेमें श्री गुरु इस धरा पर शाश्वत रहे। लेकिन....

मुमुक्षुओंके जीवन आधार, मुमुक्षुओंको निःसहाय, अनाथ छोड़कर चले गये। क्या कुदरतको यह स्थिति मंजूर नहीं है कि, ऐसे दिव्यपुरुष शाश्वत इस धरा पर बिराजमान रहें? क्या कुदरत इतनी निष्ठुर भी बन सकती है ? क्या कालको ज़रा सी भी दया नहीं आयी और मुमुक्षुके प्यारे परमेश्वरको छीन लिया ? ऐसे-ऐसे अनेक प्रश्नों व असमाधानके बीच सारे मुमुक्षुवृंदकी आँखोंसे अविरत अश्रुधारा बहती रही। इस विराट व्यक्तित्वका वियोग मुमुक्षुओंके लिए एक वज्रपात बन गया। मुमुक्षुओं अवाचक नेत्रोंसे स्वयंके श्रीगुरुकी असहनीय विदाईको देखते रहे। दूर-दूर तक फैली हुई अमाप क्षितिजोंमे स्वयंकी आभा फैलाते हुए इस विश्वविभूतिका महा प्रयाण हुआ।

- उपकृत मुमुक्षुवृंद

आचार्य भगवंत कुंदकुंदाचार्यके प्रति धर्मात्माओंके गुण-संकीर्तन

सर्व दुःखोंसे मुक्त होनेका उपाय एकमात्र आत्मज्ञान है। जिसे स्वभावका यथार्थ महात्म्य आया, उसे निमित्तका - सत्देव - शास्त्र - गुरुका बहुमान आये बिना रहता ही नहीं है। गुरु बगैर धर्म समझमें आ नहीं सकता क्योंकि जगत को सत् वस्तुका अनादिसे अपरिचय, अनभिज्ञता है। (अतः) प्रथम सत् समझने के लिये प्रत्यक्ष साक्षात् बिराजमान सत् निमित्त चाहिये, क्योंकि दैदिप्यमान दीपक की प्रगट लौ से ही अन्य दीपक प्रज्वलित हो सकता है। जिसके कारण उपकारका आरोप तो प्रत्यक्ष उपकारी वर्तमान निमित्त पर ही होता है। जिसकी जैसी योग्यता हो, उसे उस योग्य संयोग (निमित्त) मिले बगैर रहता ही नहीं है। और जब जीव स्वयं परिणमित होता है, तब निमित्तका उपकार (वीतराग होने तक) गाये बिना नहीं रहता।

श्री कुंदकुंदाचार्य भगवानने जो वस्तु कही है, उससे महान उपकार हुआ है - वह गुरु के बिना समझमें आये वैसी नहीं है जो परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी के निम्न वचनों द्वारा व्यक्त होती है -

``बूझी चहत जो प्यास को, है बूझन की रीत;
पावे नहीं गुरुगम बिना, एही अनादि स्थित।।''

``हे कुंदकुंद आदि आचार्यों ! आपके वचन भी स्वरूपानुसंधानमें इस पामरको परम उपकारभूत हुए हैं। इसके

लिये मैं आपको अतिशय भक्तिसे नमस्कार करता हूँ।''

- कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी

(आत्मजागृति : फरवरी - १९९३)

``अहो ! महान संत-मुनिवरोंने जंगलमें रहकर आत्मस्वभावका अमृतनिर्झर प्रवाहित किया है। आचार्यदेव तो धर्मके स्तंभ हैं, जिन्होंने पवित्रधर्मको जीवंत कर रखा है। गजब कामक किया है ! साधकदशामें स्वरूपकी शांति वेदन करते हुए परीषहोंको जीतकर, परम सत्को अक्षुण्णरूपसे जीवंत रखा है। आचार्यदेवके कथनमें केवलज्ञानीकी झंकार गूँजती है। ऐसे महान शास्त्रोंकी रचना कर उन्होंने बहुत जीवों पर असीम उपकार किया है। उनकी रचना तो देखो पद-पदमें कितना गंभीर रहस्य भरा है ! यह तो सत्यका शंखनाद है।''

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी.

(आत्मजागृति : फरवरी - १९९३)

卐

``स्वरूप की लीला जात्यंतर है। मुनिराज चैतन्यके बागमें क्रीडा करते-करते कर्मके फलका नाश करते हैं। बाह्यमें आसक्ति थी उसे तोड़कर स्वरूपमें मंथ्र - स्वरूपमें लीन - हो गये हैं। स्वरूप ही उनका आसन, स्वरूप ही निद्रा, स्वरूप ही आहार है; वे स्वरूपमें ही लीला, स्वरूपमें ही विचरण करते हैं। सम्पूर्ण श्रामण्य प्रगट करके वे लीलामात्रामें श्रेणी माँडकर केवलज्ञान प्रगट करते हैं''

- पूज्य बहिनश्री चंपाबेन.

(आत्मजागृति : फरवरी - १९९३)

卐

``आचार्य भगंवत तो निरंतर अमृतरसका ही पान करते थे, अमृत रसमें ही मग्न रहते थे। जैसे अच्छा भोजन करते समय अपने कुटुंबजनोंकी याद आती है वैसे आचार्यदेवको करुणा आती है कि भाई ! तुमारे पास भी आनंदका दरिया पड़ा है, तुम भी उसको पीओ... पी ओ !''

- पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी.

(आत्मजागृति : फरवरी - १९९३)

卐

``आध्यात्मिक जगतमें आचार्य भगवंत श्री कुंदकुंदाचार्यदेवने जिन शासन के स्थम्भ जैसा काम किया है। उनका विषय प्रतिपादन इतना प्रौढ़, अगाध, गहराईवाला, मर्मर्स्पशी और चमत्कृतिमय है की वह उच्च कोटि के मुमुक्षुओंके उपयोगको निज परमात्मा की प्राप्ति करवाता है। अंतरमें भरे हुए अनुभव अमृतमें से धुलकर निकलती उनकी वाणीमें कोई ऐसा चमत्कार है कि, वह पात्र जीवके अंतरको परम आत्मरसमय शीतल और सुधास्यंदी बना देती है। वास्तवमें, उनके परमागमोंकी प्रत्येक गाथामें दिव्यध्वनिका संदेश है और इतनी अपार गहराई है कि जिसका नाप निकालने पर स्वयंकी शक्तिका नाप निकल जाता है। पात्र जीवको उनकी गंभीरता, उनका अलौकिक सामर्थ्य, उपदेशकी विचिक्षणता और अद्‌भूत सातिशयता आश्चर्यमें रख दे ऐसी भासित होती है। जंगलके शांत वातावरणमें ६-७वें गुणस्थामें झुलते महामुनिके आत्मानुभवसे निकली हुई वाणी-श्रुतगंगा श्री तीर्थंकरदेव और श्रुतकेवलीके विरहको भुलाती है।

ऐसा लगता है कि, आचार्यश्रीको जीवंत स्वामी श्री सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेवके प्रत्यक्ष दर्शन और उपदेशकी अत्यंत भावना

जागृत हुई होगी। जिसके फलस्वरूप उनको महाविदेहक्षेत्रमें स्थित सर्वज्ञ वीतराग श्री सीमंधर भगवानके समवसरणमें जानेका योग प्राप्त हुआ था। और तीर्थंकरदेवकी ॐकार ध्वनिमें से ही उपदेशको झेलकर उन्होंने श्री समयसार, प्रवचनसार आदि शास्त्रोंकी रचना की है। इसलिये इस कालमें हम सबका महान सौभाग्य है कि, महाविदेह स्थित श्री सीमंधरनाथकी वाणी आज हमको प्राप्त हुई है। अतः उनका वर्तमान भव्य जीवों पर अनंत उपकार वर्त रहा है। उस उपकार भावनासे अत्र उनके चरणारविंदमें अति-अति भक्तिभावसे वंदन करते हैं।"

- पूज्य भाईश्री शशीभाई

(स्वानुभूतिप्रकाश : दिसम्बर - १९९७)

卐

परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी के प्रति अन्य धर्मात्माओं द्वारा मुखरित गुण-संकीर्तन

``जिन्होंने इस पंचमकालमें सत्धर्मकी प्रसिद्धि की और स्वयंने अनंत भवका छेद करके, एक भव बाकी रहे ऐसी पवित्रदशा आत्मामें प्रगट की, ऐसे पवित्रपुरुषका अति अति बहुमान होना चाहिये। उनके जन्मदिनकी आज जयंती है, धन्य है उन्हें !! मैं निश्चित ही कहता हूँ कि, गुजरात-काठियावाड़ (सौराष्ट्रमें) वर्तमानकालमें मुमुक्षुजीवोंके परम उपकारी (कोई) हो तो वे श्रीमद् राजचंद्र है। गुजराती भाषामें 'आत्मसिद्धि' लिखकर जैन शासनकी शोभा बढ़ाई है। इस कालमें उनके जैसे महत् पुरुष मैंने देखे नहीं हैं। उनके एक एक वचनमें गहरा रहस्य है। वह सत्समागमके बिना समझमें नहीं आ सकता''

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी

(स्वानुभूति प्रकाश : नवम्बर - १९९७)

卐

``श्रीमद् राजचंद्र सम्यक्दृष्टि थे। उन्होंने स्वानुभूति प्राप्त की थी। वे बचपन से ही वैरागी थे। उनकी विचारशक्ति तीव्र थी। उनका ज्ञान भी बहुत था। वे गृहस्थाश्रममें रहनेपर भी न्यारे थे। उन्हें गृहस्थाश्रममें ही स्वानुभूति प्रगट हुई थी।''

- पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन

(स्वानुभूति दर्शन : प्रश्न - ४४१)

``कृपालुदेव तो परमेश्वरकी जगह निमित्त हैं ! अखंड मोक्षमार्गको उन्होंने जीवंत रखा है। उनके वचनोंमें ऐसा कोई जादु है, ऐसा कोई चमत्कार है (कि), जैन-अजैन कोई भी, किसी भी जगह पर कोई पात्र जीव होगा, योग्य होगा - उन जीवोंका हित हो जाये; ऐसा अंदर तत्त्व पड़ा है, उसमें कोई संशय नहीं है। मोक्षमार्ग पर्यंत पहुँचनेके लिये जो तत्त्व उन्होंने दिया है, वह उनका परम उपकार है।''

- पूज्य भाईश्री शशीभाई

(स्वानुभूतिप्रकाश : नवम्बर - २००१)

आध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रति अन्य धर्मात्मोओंके विनयभक्तिपूर्वक व्यक्त हृदयोद्‌गार

पंच परमेष्ठी भगवंतोंकी पहचान करानेवाले ऐसे हे गुरुदेव आप जिनेन्द्रदेवके परम भक्त हो, पंच परमेष्ठी भगवंतके परम भक्त हो, श्रुतदेवी माता आपके हृदयमें उत्कीर्ण हो गये हैं। जिनेन्द्र भगवंतोंके एवम् मुनिवरभगवंतोंके दर्शन व स्मरणसे आपका अंतःकरण भक्तिसे उभर जाता है।

ऐसे अनेकविध अद्‌भुत महिमासे देदिप्यमान, रत्नत्रयके आराधक हे गुरुदेव! आपने उमरालामें जन्म लेकर उमरालाकी भूमिको पावन किया है। आपश्रीने बचपनसे ही संसारसे विरक्त होकर संसारका त्याग किया, जगतमें सत्य स्वरूपका दृढ़तापूर्वक प्रकाश किया, वीरके मार्गका स्वयंने आराधन करके, भारतके जीवोंको समझाकर उपकार किया, अतः हे गुरुदेव ! आप भारतके भानु हो। आप जैसे दिव्य पुरुषका इस भारतवर्षमें अवतार हुआ, ऐसे माता-पिताको धन्य है। आप जहाँ बसे, वह भूमि धन्य है। गुरुदेव जहाँ बसे हैं उस क्षेत्रका वातावरण अनूठा होता है।

परम प्रतापी गुरुदेवने इस पामर सेवक पर अनन्त-अनन्त उपकार किया है। गुरुदेवके उपकारका वर्णन कैसे हो ? गुरुदेवके गुणोंका बहुमान हृदयमें रहो ! गुरुदेवके चरण कमलकी सेवा हृदयमें रहो !

- पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन

(गुरु-गुण संभारणा - १७२)

卐

``अनंत तीर्थंकरो हो गए, लेकिन अपने तो गुरुदेवश्री ही सबसे अधिक हैं। जैसे कि - अपनेको धनकी, ज़रूरत हो और कोई लखपति अपनी ज़रूरत-अनुसार धन दे देवे, तो वह (लखपति) अपने लिए तो अन्य करोड़पतिसे भी अधिक है। - ऐसे ही, गुरुदेवश्री अपने लिए तो तीर्थंकरसे भी अधिक हैं,अपना हित तो इनसे हुआ है।''

(द्रव्यदृष्टि प्रकाश : वचनामृत -५९)

``हे गुरुदेव ! आपकी वाणीका स्पर्श होते ही मानो विश्वकी उत्तमोत्तम वस्तुकी प्राप्ति हो गई। क्या मैं मुक्त होनेवाला हूँ ! अरे ! शास्त्रोंमें जिस मुक्तिकी इतनी महिमा बखानी है, उसे आपके शब्द मात्रने इतना सरल कर दिया !''

- पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानी

(द्रव्यदृष्टि प्रकाश : पत्रांक - १७)

卐

``आपकी सर्वोत्कृष्ट विशेषता यह है कि जैन जगत सम्यक्दर्शन और मिथ्यादर्शन जैसे प्रयोजनभूत विषयमें अनभिज्ञ था। ऐसे समयमें आपने प्रस्तुत विषय पर जो प्रकाश ड़ाला है वह शायद अभूतपूर्व है। जैन दर्शनका यह विषय रहस्यमय रहा है और इस कारणसे संसार परिभ्रमण मिट नहीं सका है। अनंतकालके ऐसे परिभ्रमणसे छुड़ानेके लिये आप हमेशा करुणावंत रहे। और आपकी ऐसी निष्कारण

अनंत करुणाकी स्तुति हम नत् मस्तक होकर करते हैं। आपकी स्व-परकल्याणक प्रवृत्ति आनेवाले हजारों साल तक जीवंत रहेगी और जयवंत रहेगी।"

- पूज्य भाईश्री शशीभाई

(स्वानुभूतिप्रकाश : मई - १९९७)

卐

भगवती-स्वरूप प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिनके प्रति अन्य धर्मात्माओं द्वारा व्यक्त भावविभोर हृदयोद्‌गार

``बहिन (बहिनश्री चंपाबेन) तो आराधनाकी देवी हैं। पवित्रतामें सारे भारतमें अजोड़ हैं। उनकी छत्रछाया सारे सोनगढ़में है। ओहो ! बहिन तो भगवतीस्वरूप हैं। तुझे और कहाँ ढूँढ़ने जाना है ? उनके दर्शन कर न ! एक बार भावसे जो उनके दर्शन करेगा उसके अनंत कर्मबंधन ढीले हो जायेंगे। उनके चरणोंसे जो लिपटा रहेगा उसे भले ही सम्यक्‌दर्शन न हो, तत्त्वका अभ्यास न हो, तो भी उसका बेड़ा पार है।''

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी

(आत्मजागृति : मई - १९९६)

卐

``अरे ! यह जीव (बहिनश्री चंपाबेन) तो कोई अलौकिक है ! अधिक बोलती नहीं इसलिये कुछ नहीं ऐसा नहीं है। यह तो गंभीर द्रव्य है !

इनका पुरुषार्थ तो इतनी प्रबलतासे उछल रहा है कि यदि पुरुष होती तो कबकी मुनिदीक्षा लेकर वनजंगलमें चली जाती, यहाँ दिखती भी नहीं; क्या करे, स्त्रीका शरीर है !

...जिस प्रकार मालामें मनकोंका मेर होता है उसी प्रकार यह तो समस्त मण्डलकी मनकोंकी मेर हैं ! इन्हींसे मण्डलकी शोभा

है। इनसे तो सब नीचे, नीचे और नीचे ही हैं।''

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी

(आत्मजागृति : मार्च - १९९६)

卐

``(पूज्य बहिनश्री) गणधरका जीव हैं, इसलिये भविष्यमें वे बारह अंगकी रचना करेंगे। बहिनश्रीकी नज़र बहुत सूक्ष्म थी जैसे कि वर्तमान समाजको वास्तवमें क्या देना जरूरी है, यह उनके ज्ञानमें बहुत आया है। उनके वचनामृत प्रसिद्ध हुए तब गुरुदेव फिदा हो गये ! एक-एक बोलमें अकेला अध्यात्मका अमृत भरा है ऐसा कहना होगा। ...भावनाका विषय प्रस्थापित करके तो उन्होंने जैसे फैंसला ही कर दिया है। मुमुक्षुओंको तो जैसे एक रत्न ही हाथमें आ गया ऐसा कहना होगा। ''

- पूज्य भाईश्री शशीभाई

(स्वानुभूति प्रकाश : अगस्त - २००१)

卐

पुरुषार्थमूर्ति पूज्य निहालचंद्र सोगानीजी के प्रति अन्य धर्मात्माओंके द्वारा गुण-संकीर्तन

``श्री सोगानी वैमानिक देवमें गये हैं, वहाँसे निकलकर मनुष्यभव प्राप्त कर झपट करेंगे; और वे मेरे पहले मुक्तिमें जायेंगे। और जब में तीर्थंकर - भवमें (-चौथे भवमें) मुनि दीक्षाके समय सर्व सिद्धोंको नमस्कार करूँगा तब मेरा नमस्कार उन्हें भी प्राप्त होगा।''

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी
(आत्मजागृति : फरवरी - १९९३)

卐

`निहालभाईकी कथनशैलीकी भाषा कड़क होने पर भी वस्तु स्थिति तो बराबर कही है। वे कैसे लगते थे, किसीका खास कोई परिचय नहीं था, बोलना कम था इसलिये दूसरोंको बाहरसे ख्याल नहीं आये। उनकी अंतरकी परिणति भिन्न थी। जीवके अंतर परिणाम बाहरसे जान नहीं सकते। उन्होंने वस्तु स्थिति सत्य कही है। मार्ग सत्य कहा है उसे ग्रहण करना चाहिये।

`द्रव्यदृष्टिप्रकाश' में कहा है न ? `पर्याय मेरा ध्यान करो तो करो, मैं किसका ध्यान करूँ?' यह बराबर कहा है। द्रव्यको कहाँ ध्यान करना है ? वास्तविक स्थिति तो वस्तुकी ऐसी है।

जैसा है वैसा कहते हैं। किसीको भाषा कड़क लगे तो उसका क्या हो सकता है? अंतरकी परिणति भिन्न ही थी।"

- पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन

(स्वानुभूतिप्रकाश : मई - २००१)

卐

पूज्य गुरुदेवश्रीके महापुराणका यह एक पात्र है। सोनगढ़की तीर्थभूमि-इस तीर्थभूमिमें सम्यक्दर्शनरूपी सपूत कोई पैदा नहीं हुआ था, तब तक जो-जो धर्मात्मा हुए वे सोनगढ़ भूमिमें नहीं हुए, अलग-अलग भूमि पर हुए हैं। जबकि गुरुदेवकी यह जो साधनाभूमि है, इस साधनाभूमिको साधनाकी एक नयी यशकलगी लगी और यह भूमि भी फलवंती हुई और एक फल पका-वे सोगानीजी हैं। पूज्य सोगानीजीका बहुमान, यह सिर्फ एक व्यक्तिका बहुमान नहीं है, यह सम्यक्दर्शनका बहुमान है और जो-जो सभी सम्यक्दर्शन धारक महात्माएँ हैं, धर्मात्माएँ हैं, उन अनंत-तीनों कालके धर्मात्माओंका बहुमान है, सम्मान है।

- पूज्य भाईश्री शशीभाई

(स्वानुभूतिप्रकाश : मई - २००१)

卐

पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री सोगानीजी का सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई के प्रति रहा बेहद वात्सल्यका प्रतीक

कलकत्ता - १०-९-१९६३

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।

आत्मार्थी....

पत्र आपका ता. ३-९का मिला। पहलेवाला पत्र भी यथासमय मिल गया था। दशलक्षणी पर्व, आपने तीने लोकमें परम उत्तम, निर्भय बनानेवाले, परम निर्भय, सिंहस्वरूप श्री गुरुदेवके सान्निध्यमें मनायें होंगे। वह कहते हैं - ``स्वभावअंशमें किंचित् भी दोष नहीं है, नित्य स्वभावमें दृष्टि थम्भ जानेसे, उत्पन्न हुए सहज स्वभावमें, क्षमा आदि दूषित भाव प्रत्यक्ष पराश्रित (जड़के) परके हैं;''अतः सहज क्षमाभाव त्रिकाल जयवन्त वर्तो ! हमने कभी दोष किया ही नहीं, ऐसा स्वभाव निरंतर वृद्धि पामो। विभावकी गूँजमें गूँजता हुआ अज्ञानभाव सहज नाश पामो। विभावमें तनीजो नहीं। स्वभाव-सीमामें निरंतर अडिग जमे रहो। क्षणिक विभाव वेदीजता हुआ अधिककी सीमाको पार नहीं कर सकता, अतः वही लय हो जाता है।''

``करता करम क्रिया भेद नहीं भासतु है,
अकर्तुत्व सकति अखण्ड रीति धरै है।
याहीके गवेषी होय ज्ञानमाहिं लखि लीजे,
याहीकी लखनि या अनंत सुख भरे है''।।

ज्ञान कणिका पत्र द्वारा मंगवाई सो यह तो आपके पास ही है। स्वअवलम्बनसे सहज ही विभावसे पृथक् होकर प्रगटती रहती है। हे शशीभाई ! अनेकानेक जीवोंकी योग्यता अक्षय सुखके उदयकी है, अतः तीर्थंकरसे भी अधिक सत्पुरुषका योग प्राप्त हुआ है, जिनकी नित्य प्रेरणा उधरसे विमुख कराकर स्वयंके नित्य भण्डारकी और लक्ष्य कराती रहती है; यहाँसे ही पूज्य गुरुदेवके न्याय अनुभवसिद्ध होकर दृढ़ता प्राप्त कराते हैं।...

``जिन (निज) सुमरो जिन चिंतवो, जिन ध्यावो सुमनेन।
जिन ध्यायंतहि परमपद, लहिये एक क्षणेन''।।

वात्सल्यानुरागी

निहालचंद्र

(स्वानुभूतिप्रकाश : मई - १९९९)

卐

सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई के प्रति हृदयोद्‌गार अभिनंदन पत्र के रूपमें

हे सौम्यताकी मूर्ति !!!

अखिल विश्वमें आत्मकल्याणके शंखनादको गुंजानेवाले, शुद्धात्म तत्त्ववेदी, लघुवयमें ही पूर्व संस्कारकी ड़ोरको जोड़कर अप्रतिम पुरुषार्थका पराक्रम करके आत्मनिधान को प्रगट करनेवाले, हे दिव्यमूर्ति ! आपके पावन चरणोंमें कोटि-कोटि वंदन !!! कोटि-कोटि वंदन !!!

हे आश्चर्यकी प्रतिमा !!!

जैसे आपश्रीका जीवन उपशमरससे सराबोर है वैसे ही आपश्रीके मन-वचन-कायाके योगमेंसे भी उपशमरस टपकता है। इस दुषमकालमें भोगविलासके प्रचूर योगमें डुबे हुए समस्त मुमुक्षुसमाजके एकमात्र आत्मकल्याणकी धून लगा देने की आपश्रीकी चमत्कारिक अज़ोड शक्तिको वंदन हो !!! वंदन हो !!!

हे जीवन शिल्पी !!!

आपश्रीका वाणी अनादिसे दिशामूढ़ रहनेवाले जीवके लिए भावि मंगलमय जीवनका पथ-प्रकाश करके, निर्भ्रांत दर्शनकी पगडण्डीसे, प्रयोजनकी सिद्धि कराते हुए, तत्त्वका अनुशीलन करानेवाले, मुमुक्षुको आरोहण क्रम पर ले आनेवाली, अमृत पत्रका रसपान करानेवाली है। हे योगीश्वर !!! आपश्रीका क्या गुणगान करें ? आपश्रीके मिष्ट, रहस्यगंभीर, दिव्यध्वनिके नवनीत समान प्रवचनों वास्तवमें ही संजीवनी

समान है। वर्तमानमें अगर किसीको सरस्वतीका वरदान है तो वे आपश्री ही है।

लघुवयसे ही आप साध्यलक्षी, शोधक वृत्तिवान, वैरागी, प्रबल पुरुषार्थके धारक, प्रौढ गंभीर परिणति के धारक, आध्यात्म जगतके वर्तमान प्रणेता, सत्संग प्रिय, सरल, परेच्छानुचारी, प्रेममूर्ति इत्यादि अनेकानेक दिव्य गुणोंके खान हैं। हम सभी मुमुक्षुजन आपश्रीका अनुकरण करें ऐसी आजके दिन प्रार्थना करते हैं। सभी ज्ञानीपुरुष तो श्रुतका गहन अवगाहन करते ही हैं, किन्तु आपश्रीने तो विदेशमें पडे हुए दिगंबर मुनिवर आचार्य भगवंतो द्वारा रचित शास्त्रोंको भारतमें लाकर अपूर्व श्रुतभक्तिकी सरिता बहाकर के भारतकी इस बहुरत्न वसुंधराको पवित्र किया है। आजके इस मांगलिक दिन पर व महामंगलकारी अवसर पर आपश्रीके गुणानुवाद करनेका सौभाग्य संप्राप्त होनेसे हम कृतार्थताका अनुभव करते हैं।

सम्यक् रत्नत्रय प्रगट करके मोक्षमार्ग का प्रवर्तन करनेवाले हे देवोंके देवेन्द्र प्रिय !!! व तीर्थंकर देवके लघुनंदन वास्तवमें आपश्री अभिवंद्य हो, अभिवंद्य हो। सनातन ज्ञानीपुरुषोंके मार्गका प्रकाशन करके समस्त मुमुक्षु समाज पर आपश्रीने परम परम उपकार किया है। आजके दिन इस उपकृतभीगे हृदयसे आपश्रीको अभिनंदन समर्पित करते हैं।

``नर धन्य ते सुकृतार्थ ते, पंडित अने शूरवीर ते,
स्वप्नेय मलिन कर्युं न जेणे, सिद्धिकर सम्यक्त्वने।''

वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट, भावनगर
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, (स्वानुभूतिप्रकाश परिवार)
भावनगर, मुंबई, कलकत्ता, मद्रास, आगरा, कोईम्बतुर,
सुरत, अहमदाबाद आदि मुमुक्षुवृंद।
दि.-५-७-१९९८ (स्वानुभूतिप्रकाश : अगस्त - १९९८)

卐

स्तुति एवं भक्ति

जिनेन्द्र स्तवन

(तर्ज-सोल सोल सपने देखे हैं आज)

रोम रोम पुलकित हो जाय,
जब जिनवर के दर्शन पाय। टेक।।
ज्ञानानन्द कलियाँ खिल जायँ,
जब जिनवरके दर्शन पाय।।
जिन-मंदिर में श्री जिनराज,
तन-मंदिर में चेतनराज।।
तन-चेतन को भिन्न पिछान,
जीवन सफल हुआ है आज।।
वीरराग सर्वज्ञ-देव प्रभु,
आए हम तेरे दरबार।
तेरे दर्शन से निज दर्शन,
पाकर होवे भव से पार।।
मोह-महातम तुरत विलाय,
जब जिनवरके दर्शन पाय।।१।।
दर्शन-ज्ञान अनंत प्रभु का,
बल अंनन्त आनंद अपार।
गुण अनंत से शोभित हैं प्रभु,

महिमा जग में अपरंपार।।
शुद्धातम की महिमा आय,
जब जिनवरके दर्शन पाय।।२।।
लोकालोक झलकते जिसमें,
ऐसा प्रभु का केवल-ज्ञान।
लीन रहे निज शुद्धातम में,
प्रतिक्षण हो आनंद महान्।।
ज्ञायक पर दृष्टि जम जाय,
जब जिनवरके दर्शन पाय।।३।।
प्रभु की अंतर्मुख-मुद्रा लखि,
परिणति में प्रगटे समभाव।
क्षण-भर में हों प्राप्त विलय को,
पर - आश्रित सम्पूर्ण विभाव।।
रत्नत्रय - निधियाँ प्रगटाय,
जब जिनवरके दर्शन पाय।।४।।

⌘

मुनिराज स्तवन

ते गुरु मेरे मन बसो, जे भवजलधि जिहाज;
आप तिरहिं पर तारहीं, ऐसे श्री ऋषिराज। ते गुरु....१
मोहमहारिपु जानके, छांडयो सब घरबार;
होय दिगम्बर वन बसे, आत्म शुद्ध विचार। ते गुरु....२
रोग-उरग-विल, वपु गिण्यो, भोग भुंजग समान;
कदलीतरु संसार है, त्याग्यो सब यह जान। ते गुरु...३
रत्नत्रयनिधि उर धरें, अरु निर्गँथ त्रिकाल;

मार्या काम खवीस को, स्वामी परम दयाल, ते गुरु....४
पंचमहाव्रत आदरै, पांचों समिति समेत;
तीन गुपति पालै सदा, अजर अमर पदहेत। ते गुरु...५
धर्म धरैं दशलक्षनी, भावैं भावन बार;
सहैं परीषह बीसद्वै, चारित रतनभंडार, ते गुरु....६
जेठ तपै रवि आकरो सूखै सरवर नीर;
शैल शिखर मुनि तप तपैं, दाझैं नग्न शरीर। ते गुरु...७
पावस रैन डरावनी, वरसे जलधर धार;
तरुतल निवसैं तब यति, बाजै झंझा व्यार। ते गुरु....८
शीत पडै कपि मद गलै, दाहै सब वनराय;
ताल तरंगनिके तटैं, ठाडै ध्यान लगाय। ते गुरु...९
इहि विधि दुर्द्धर तप तपै, तीनो काल मंझार;
लागे सहज स्वरूप मैं, तनसो ममत निवार। ते गुरु....१०
पूरव भोग न चितवैं, आगम बांछै नाहि;
चहुँगतिके दुःखसों डरैं, सुरतु लगी शिवमांही। ते गुरु...११
रंगमहलमें पौढते, कोमल सेज बिछाय;
ते पच्छिम निशि भूमिमैं, सोवें संवरि काय। ते गुरु....१२
गज चढि चलते गरवसौं, सेना सजी चतुरंग;
निरखि निरखि पग वे धरैं, पालैं करुणा अंग। ते गुरु...१३
वे गुरु चरण जहाँ धरैं, जगमें तीरथ तेह;
सो रज मम मस्तक चढो, `भूरध' मांगे एह। ते गुरु....१४

⌘

श्रीमद् राजचंद्रजी स्तवन

धन्य ते भूमि ववाणिया, ज्यां जनम्या श्री रायचंद,
आंखलडी अमृतभरी, मुखडुं पूनमनो चांद;
खम्मा राजने रे....मारा नाथने रे..... १
मुख दीठे रे सुख उपजे, दुःख सकल दूरे थाय,
निरखी देवमाना लालने, मारुं हैयुं शीतळ थाय;
खम्मा राजने रे... त्रिलाकी नाथने रे... २
राज ते साचो हीरलो, एना मूल अमूलां थाय,
पाखनारा कोई वीरला, जेनां मन न बीजे जाय;
खम्मा राजने रे... निरागी नाथने रे.... ३
जेने ते लाग्यो रंग राजनो, एने न गमे जगनो संग,
रहे उदासीन एकला, आठे प्रहर सत्संग;
खम्मा राजने रे... मारा नाथने रे.... ४
जेने ते रुदिये राज छे, एनां हसतां निर्मळ नेण,
अंतरे आनंद उल्लसे, अमृतथी अदका वेण;
खम्मा राजने रे.... त्रिलोकी नाथने रे.... ५
करीए कलम वनराईनी, सात सागर शाही थाय,
पत्र लईए पृथ्वीतणो, राज महिमा लखियो न जाय;
खम्मा राजने रे... निरागी नाथने रे... ६
ज्ञानी अनंता थई गया, थाशे भावे काळे अनंत,
श्री रायचंद अजोड छे, त्रणे काळमां जयवंत;
खम्मा राजने रे... व्हाला राजने रे.... ७
एवा निराळा राजनुं, मने हो स्मरण निशदिन,
वृत्ति वहे प्रभु चरणमां, रहुं राज स्वरूपे लीन;
खम्मा राजने रे.... मारा नाथने रे.... ८

पूज्य गुरुदेवश्री स्तवन

अवनी उद्धारवा, भव्योने तारवा, तारो अवतार;
कहान तारी बंसीमां डोले नरनार (२)
सत्यने स्थापवा, असत्यने उथापवा;
थयो भरतमां तारो अवतार....कहान... १
आत्म उद्धारवा, भवसागर तारवा;
जिज्ञासु जीवनो साचो सरदार....कहान...२
अज्ञान मिटाववा, ज्योति प्रगटाववा;
ज्ञानमृत सींची जीवन देनार....कहान... ३
आत्मदृष्टि आपतो, जडता उथापतो,
अज्ञानी अम पर तारा उपकार....कहान...४
आत्मस्वरूपे लीन, जगथी उदासीन;
साचुं पवित्र तुं जीवन जीवनार...कहान...५
जिनशासन काज, धर्म उद्धारवा ज;
डंको वगाडयो तें भरत मोझार...कहान...६

⌘

पूज्य बहिनश्री स्तवन

मंगलकारी तेज दुलारी पावन मंगल मंगल है;
मंगल तव चरणोंसे मंडित अवनी आज सुमंगल है,
....मंगलकारी...
श्रावण दूज सुमंगल उत्तम, वीरपुरी अति मंगल है,
मंगल मातपिता, कुल मंगल धाम रु आंगन है;
मंगल जन्ममहोत्सवका यह अवसर अनुपम मंगल है,
...मंगलकारी...
मंगल शिशुलीला अति उज्ज्वल, मीठे बोल सुमंगल हैं,
शिशुवयका वैराग्य सुमंगल, आतम-मंथन मंगल है;
आतमलक्ष लगाकर पाया अनुभव श्रेष्ठ सुमंगल है,
...मंगलकारी...
सागर सम गंभीर मति-श्रुत ज्ञान सुनिर्मल मंगल है,
समवसरणमें कुंदप्रभुका दर्शन मनहर मंगल है;
सीमंधर-गणधर-जिनधुनिका स्मरण मधुरतम मंगल है,
...मंगलकारी...
शशी-शीतल मुद्रा अति मंगल, निर्मल नैन सुमंगल हैं,
आसन-गमनादिक कुछ भी हो, शांत सुधीर सुमंगल;
प्रवचन मंगल, भक्ति सुमंगल, ध्यानदशा अति मंगल है,
...मंगलकारी...
दिनदिन वृद्धिमती निज परिणति वचनातीत सुमंगल है,
मंगलमूरति-मंगलपदमें मंगल-अर्थ सुवंदन है;
आशिष मंगल याचत बालक, मंगल अनुग्रहदृष्टि रहे,

तव गुणको आदर्श बनाकर हम सब मंगलमाल लहें।
...मंगलकारी..

⌘

पूज्य सोगानीजी स्तवन

(राग - निरखी निरखी मनहर मूरत)

जिन शासननो चमकित तारो जिणंदनो दुलारो रे
आवो भावनगरमां गुरुजी, भविजन तारणहारो रे...टेक
धर्ममूर्ति तुं धर्मनो वैभव, भावनगरे लई आव्यो रे (२)
अमृतरसनी ल्हाण करावी, भविकने मन भाव्यो रे (२)
ए अमृतरस पान करता, अजरअमर बननारो रे... जिन...१

शां करीए सन्मान गुरुजी, शां करीए सन्मान रे (२)
भाव भक्तिथी स्वागत करीए, लावी अंतर मान रे (२)
तुज दर्शन अम भक्तोने, आनंद मंगलकार रे... जिन...२

चंद्र सूरज सम तपो अविचल, धर्म प्रभावना तारो रे (२)
जयवंत होजो निहालचंद्रजी, स्वरूप जीवन जीवनारो रे (२)
जय जयकार थाये जगतमां, भविजनो आधारो रे... जिन...(३)

कोटि कोटि वंदन गुरुजी, भाव चरणने ध्याउं रे (२)
ऐक्य साधी आत्म आराधी, सहज स्वरूपने पाउं रे (२)
शांत सुधारस भोगी भ्रमर थई, शिवरमणी रमनारो रे... जिन...४

⌘

पूज्य भाईश्री जन्मोत्सव स्तवन

हे... राणपुरना राजा ने भावनगरना भेरु,
एनी कथा करे आ छोरु, एनो हेलो संभाळो
हो... ओ... ओ... ओ... जी..
के जी रे मारो हेलो सांभळो हो ओ... ओ... ओ... जी..
हे .... महाविदेहथी पधारीया, ने सुरेन्द्रनगरने धाम,
हे .... रेवामातने पारणे, ने मनसुखबाईने घेर।
हे .... मागशर वदनी आठमे, ने जनम्यां बाळकुमार,
हे .... अम पामरने तारवा, पधार्या आप महान।
हे खमा रे खमा रे तने घणी घमा मारा, भाईश्री व्हाला तने झाझी खमा,
जुग जुग जुग जुग जीवजे वीरा मारा, भाईश्री व्हाला तने झाझी खमा (२)
हे .... एकवीस वर्षनी उम्र रे, ने भावनगरने धाम,
हे .... ने भादेवानी शेरीमां, हे जी प्रगटाव्युं अपूर्व ज्ञान।

हे .... रतन तु गुरु-कहाननो, अने शासन तणो शणगार,
हे .... हृदये वस्यो चंपामातने, अने निहालने प्रकाशनहार।
हे खमा रे खमा रे.....

हे .... भारतनो भडवीर तुं, ने बनाव्युं परमागम धाम,
हे .... कर्युं साकार स्वप्न कहाननुं, ने बनाव्युं नंदीश्वर धाम।

हे .... पेटे पाटा बांधीने, ने बनाव्युं जिन-मंदिर,
हे .... भेट भावनगरने धरी, दाखव्युं समर्पण अमाप।
हे खमा रे खमा रे.....

हे .... विरोधना वंटोळ वच्चे, वीरता विलसावीने,
हे .... `सूर्यकिर्ती' भगवानने, तमे लाव्या वैभव साथ।

हे .... मातचंपाने पकडवा, दुर्भागी वोरंट लावीया,
हे .... सपूत रक्षक तु बन्यो, कीयो शासन पर उपकार।
हे खमा रे खमा रे.....

हे .... `धन्य अवतार'ने रची, हृदय खोल्युं गुर-कहान,
हे .... निर्दोष प्रेम दर्शावीयो, ...

हे .... `धन्य-आराधना'ने रची, भक्ति करी श्री गुरुराज,
हे .... दर्शाव्युं धर्मीनुं स्वरूप, करी परिणमन तद्रुप।
हे खमा रे खमा रे.....

हे .... करावीने मंगळ प्रारंभ, आर्शीवचन ते आपीया,
हे .... केडी निभ्राँत दर्शन तणी, बतावी कीयो उपकार ।

हे .... दर्शनमोहने मारवा, ने भवभ्रमणने भांगवा,
हे .... प्रयोजननी सिद्धि रची, कीधुं अपूर्व काम।
हे खमा रे खमा रे.....

हे .... तत्वानुशीलन चरु तणे, रतन भर्या ते अपार,

हे .... गागरमांही सागर भर्यो, सामर्थ छे तुज आपार।

हे .... कोण कहे छे आ पंचमकाण छे, आ छे चोथो काण,
हे .... बारे मेघ खांगा थया, भाईश्री वरस्या अनराधार।
हे खमा रे खमा रे.....

हे .... मर्म पारखी श्रीराजनो, हे झीली लीधो ते सार,
हे .... प्रेम-भक्ति सौभाग्यनी, बतावी कीयो उपकार।

हे .... मार्गना क्रमने प्रकाशीने, सरळ करी छे वात,
हे .... परम बांधव तु बन्यो, झाली अमारो हाथ।
हे खमा रे खमा रे.....

हे .... सिमंधर भगवानना समोसरणमां, ने महाविदेहक्षेत्र मोझार,
हे ....फतेहकुमारने रुचि जागी, तिलक कर्युं श्री भगवान।

हे ....भावना ने भक्ति जो साथ छे, तो मुक्ति नथी कांई दूर,
हे .... भाईश्रीना अशीषथी, केतू बने मुक्तिनो सेतू।
हे खमा रे खमा रे.....

हे ... मुंगा वाचा पामता, ने पंगु गिरि चडी जाय,
हे ... भाईश्री-वचन बळवान छे, अंध देखता थाय।

हे ... गुरु-गोविंद दोनो खड़े, किसको लागु पाय ?
हे ... बलिहारी गुरुराजनी, जिसने गोविंद दियो बताय।
हे खमा रे खमा रे.....

हे ... वारस अहो ! महावीरना, शुरवीरता रेलावजो,... रेलावजो,
हे ... कायर बनो ना कोई दि, कष्टो सदा कंपावजो। (२)
हे ... रे ! सिंहना संतानने, शियाळ शुं करनार छे ? (२)
हे ... मरणात संकटमां टके, ते टेकना धरनार छे। (२)
हे खमा रे खमा रे.....
हे ... काय तणी दरकारी शी ? जो शत्रुवट समजाय तो,
हे ... कुळवंत कुळटना तजे, शुं सिंह तरणा खाय जो ?(२)
हे ... सर्वज्ञनी समजण ग्रहे, ते मरणने शाने गणे शाने ?गणे?
हे ... क्षत्रिय जो वीरहाक सुणे, तो चढ़ जट ते रणे... (२)
हे खमा रे खमा रे.....

हे ... खंधक मुनिना शिष्य सौ, धाणी विशे पिलाईने,
हे ... संकट सही सर्वोपरी, पाम्या परमपद भाईने...पाम्या..
हे ... निज अमर आत्माने स्मरीने, अमरता वरता घणा...
हे ... हे मोक्षगामी सत्पुरुषना, चरणमां हो वंदना, प्रभु चरणमां हो वंदना
हे खमा रे खमा रे.....

हे ... संग्राम आ शूरवीरनो, आव्यो अपूर्व दीपावजो,
हे ... करता न पाछी पानी त्यां, गुरुराज पडखे भावजो।
हे ... समता, सहनशीलता, क्षमा, धीरज, समाधि-मरणमां,
हे ... मित्रो समान सहाय करशे, मने धरो प्रभु चरणमां...
हे खमा रे खमा रे.....
हे ... केवळ असंग दशा वरो, प्रतिबंध सर्वे टाळजो,
हे ... स्वच्छंद छोड़ी शुद्धभाव। सर्वमां प्रभु भाळजो...
हे ... दुश्मन प्रमाद हणी हवे, जागृत रहो ! जागृत रहो !

हे ... सद्गुरु-शरणे हृदय राखी, अभय आनंदित हो...
हे खमा रे खमा रे.....

हे ... नर धन्य ते सुकार्थने शुरवीरने पंडित ते,
हे ... स्वपनेय मलिन कर्युं न जेणे सिद्धिकर सम्यकत्वने।
हे ... परमेश्वरमें गुरु बसे, परमेश्वर गुरु माहि,
हे खमा रे खमा रे.....

हे ... सुंदर दोउ परस्पर, भिन्नभाव कछु नाहीं।
हे ... सद्गुरु सुधा समुद्र है, सुधा मही है नेन
हे ... नखशिख सुधा समान है, सुधा
हे ... गुरु बिन ज्ञान न उपजे, गुरु बिन मिले न भेद,
हे ... गुरु बिन संशय ना मिटे, जय जय जय श्री गुरुदेव।
हे खमा रे खमा रे.....

हे ... प्रत्यक्ष सद्गुरु योगथी, स्वच्छंद ते रोकाय,
हे ... अन्य उपाय कर्या थकी, प्राये बमणो थाय।
हे ... परमेश्वर और परमगुरु, दोनो एक समान,
हे ... गुरु ते पावे ज्ञान।
हे ... जंगलमां मंगल बने, पापी बने पवित्र,
हे ... ए अचरज नजरे तरे, मरण बने छे मित्र।
हे ... स्वच्छंद मत, आग्रह तजी, वर्ते सद्गुरुलक्ष,
हे ... समकित तेने भाख्युं, कारण गणी प्रत्यक्ष।
हे ... अखंड विश्वासे वसुं, साचा श्री गुरुराज,
हे ... रडवडतो केम (कायम) राखशे ? बनुं नहीं नाराज।
हे खमा रे खमा रे.....

हे ... सौ प्राणी आ संसारना सन्मीत्र मुज व्हाला थजो,
हे ... सद्‌गुणमां आनंद मानु मित्र के वेरी हजो।
हे ... समर्थ `श्रीमद् राजचंद्र' हुं श्रद्धाळु बाळ,
हे ... अचुक आश्रय आपीने, पळ पळ ल्यो संभाळ।
हे खमा रे खमा रे.....

हे ... भावनगरना आ बाळको, अनाथ थईने रझळता,
हे ... नाथ जल्दी पधारजो, अमे बाळ तारे आधार।
हे ... वायदा करी नथी आवता, हवे झाझुं ना तलसावजो,
हे ... छे अरज प्रभु संगे पधारजो।
हे खमा रे खमा रे.....

⌘

श्रीमद् राजचंद्र - पत्रांक - ५६९

बंबई, फागुन वदी ३, १९५१

श्री सत्पुरुषोंको नमस्कार

सर्व क्लेशसे और सर्व दुःखसे मुक्त होनेका उपाय एक आत्मज्ञान है। विचारके बिना आत्मज्ञान नहीं होता, और असत्संग तथा असत्प्रसंगसे जीवका विचारबल प्रवृत्त नहीं होता, इसमें किंचित् मात्र संशय नहीं है।

आरंभ-परिग्रहकी अल्पता करनेसे असत्प्रसंगका बल घटता है, सत्संगके आश्रयसे असत्संगका बल घटता है। असत्संगका बल घटनेसे आत्मविचार होनेका अवकाश प्राप्त होता है। आत्मविचार होनेसे आत्मज्ञान होता है, और आत्मज्ञानसे निजस्वभावस्वरूप, सर्व क्लेश एवं सर्व दुःखसे रहित मोक्ष प्राप्त होता है, यह बात सर्वथा सत्य है।

जो जीव मोहनिद्रामें सोये हुए हैं वे अमुनि हैं। निरंतर आत्मविचारपूर्वक मुनि तो जाग्रत रहते हैं। प्रमादीको सर्वथा भय है, अप्रमादीको किसी तरहसे भय नहीं है, ऐसा श्री जिनेंद्रने कहा है।

सर्व पदार्थके स्वरूपको जाननेका हेतु मात्र एक आत्मज्ञान करना ही है। यदि आत्मज्ञान न हो तो सर्व पदार्थोंके ज्ञानकी निष्फलता है।

जितना आत्मज्ञान होता है उतनी आत्मसमाधि प्रगट होती है।

किसी भी तथारूप योगको प्राप्त करके जीवको एक क्षण भी अंतर्भेदजागृति हो जाये तो उससे मोक्ष विशेष दूर नहीं है।

अन्य परिणाममें जितनी तादात्म्यवृत्ति है, उतना जीवसे मोक्ष

दूर है।

यदि कोई आत्मयोग बने तो इस मनुष्य भवका मूल्य किसी तरहसे नहीं हो सकता। प्रायः मनुष्यदेहके बिना आत्मयोग नहीं बनता ऐसा जानकर, अत्यंत निश्चय करके इसी देहमें आत्मयोग उत्पन्न करना योग्य है।

विचारकी निर्मलतासे यदि यह जीव अन्यपरिचयसे पीछे हटे तो सहजमें अभी ही उसे आत्मयोग प्रगट हो जाये। असत्संग-प्रसंगका घिराव विशेष है, और यह जीव उससे अनादिकालका हीनसत्त्व हुआ होनेसे उससे अवकाश प्राप्त करनेके लिये अथवा उसकी निवृत्ति करनेके लिये यथासंभव सत्संगका आश्रय करे तो किसी तरह पुरुषार्थयोग्य होकर विचारदशाको प्राप्त करे।

जिस प्रकारसे इस संसारकी अनित्यता, असारता अत्यंतरूपसे भासित हो उस प्रकारसे आत्मविचार उत्पन्न होता है।

अब इस उपाधिकार्यसे छूटनेकी विशेष-विशेष आर्त्ति हुआ करती है, और छूटे बिना जो कुछ भी काल बीतता है, वह इस जीवकी शिथिलता ही है, ऐसा लगता है; अथवा ऐसा निश्चय रहता है।

जनकादि उपाधिमें रहते हुए भी आत्मस्वभावमें रहते थे, ऐसे आलंबनके प्रति कभी भी बुद्धि नहीं जाती। श्री जिनेंद्र जैसे जन्मत्यागी भी छोड़कर चल निकले, ऐसे भयके हेतुरूप उपाधियोगके निवृत्ति यह पामर जीव करते-करते काल व्यतीत करेगा तो अश्रेय होगा, ऐसा भय जीवके उपयोगमें रहता है, क्योंकि यही कर्तव्य है।

जो रागद्वेषादि परिणाम अज्ञानके बिना संभवित नहीं है, उन रागद्वेषादि परिणामोंके होते हुए भी, सर्वथा जीवन्मुक्तता मानकर जीवन्मुक्तदशाकी जीव आसातना करता है, ऐसे प्रवृत्ति करता है। सर्वथा रागद्वेषपरिणामकी परिक्षीणता ही कर्तव्य है.

जहाँ अत्यंत ज्ञान हो वहाँ अत्यंत त्यागका संभव है। अत्यंत

त्याग प्रगट हुए बिना अत्यंत ज्ञान नहीं होता, ऐसा श्री तीर्थंकरने स्वीकार किया है।

आत्मपरिणामसे जितना अन्य पदार्थका तादात्म्य-अध्यास निवृत्त होना, उसे श्री जिनेंद्र त्याग कहते हैं।

वह तादात्म्य-अध्यास-निवृत्तिरूप त्याग होनेके लिये यह बाह्य प्रसंगका त्याग भी उपकारी है, कार्यकारी है। बाह्य प्रसंगके त्यागके लिये अंतरत्याग कहा नहीं है, ऐसा है; तो भी इस जीवको अंतर्त्यागके लिये बाह्य प्रसंगकी निवृत्तिको कुछ भी उपकारी मानना योग्य है।

नित्य छूटनेका विचार करते हैं और जैसे वह कार्य तुरत पूरा हो वैसे जाप जपते हैं। यद्यपि ऐसा लगता है कि वह विचार और जाप अभी तक तथारूप नहीं है, शिथिल है; अतः अत्यंत विचार और उस जापका उग्रतासे आराधन करनेका अल्पकालमें योग करना योग्य है, ऐसा रहा करता है।

प्रसंगसे कुछ परस्परके संबंध जैसे वचन इस पत्रमें लिखे हैं, वे विचारमें स्फुरित हो आनेसे स्व-विचार बल बढ़नेके लिये और आपके पढ़ने-विचारनेके लिये लिखेते हैं।

जीव, प्रदेश, पर्याय तथा संख्यात, असंख्यात, अनंत आदिके विषयमें तथा रसकी व्यापकताके विषयमें क्रमपूर्वक समझना योग्य होगा।

आपका यहाँ आनेका विचार है, तथा श्री डुंगरका आना संभव है, यह लिखा सो जाना है। सत्संगयोगकी इच्छा रहा करती है।

⌘

हुं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदर्शनमय खरे;
कंई अन्य ते मारुं जरी, परमाणुमात्र नथी अरे.

⌘

पूज्य बहिनश्री वचनामृत - ४१२

मरण तो आना ही है जब सब कुछ छूट जायगा। बाहरकी एक वस्तु छोड़नेमें तुझे दुःख होता है, तो बाहरके समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव एकसाथ छूटने पर तुझे कितना दुःख होगा ? मरणकी वेदना भी कितनी होगी ? `कोई मुझे बचाओ' ऐसा तेरा हृदय पुकारता होगा। परंतु क्या कोई तुझे बचा सकेगा ? तू भले ही धनके ढेर लगा दे, वैद्य-डॉकटर भले सर्व प्रयत्न कर छूटें, आसपास खड़े हुए अनेक सगे-संबन्धियोंकी ओर तू भले ही दीनतासे टुकुर-टुकुर देखता रहे, तथापि क्या कोई तुझे शरणभूत हो ऐसा है ? यदि तूने शाश्वत स्वयंरक्षित ज्ञानानंदस्वरूप आत्माकी प्रतीति-अनुभूति करके आत्म-आराधना की होगी, आत्मामेंसे शांति प्रगट की होगी, तो वह एक ही तुझे शरण देगी। इसलिये अभीसे वह प्रयत्न कर। `सिर पर मौत मंडरा रहा है' ऐसा बारम्बार स्मरणमें लाकर भी तू पुरुषार्थ चला कि जिससे `अब हम अमर भये, न मरेंगे' ऐसे भावमें तू समाधिपूर्वक देहत्याग कर सके। जीवनमें एक शुद्ध आत्मा ही उपादेय है।

⌘

पावन मधुर अद्‌भुत अहो ! गुरुवदनथी अमृत झर्यां,
श्रवणो मळ्यां सद्‌भाग्यथी नित्ये अहो ! चिद्‌रस भर्यां.
गुरुदेव तारणहारथी आत्मार्थी भवसागर तर्यां,
गुणमूर्तिना गुणगणतणां स्मरणो हृदयमां रमी रह्यां.

⌘

गुरुदेवश्री के वचनामृत बोल - १२४

ज्ञानस्वभाव स्व-परप्रकाशक है। वह परको जाने सो कहीं आस्त्रव-बंधका कारण नहीं है, तथापि अज्ञानी 'परका विचार करेंगे तो आस्त्रव-बंध होगा' ऐसा मानकर परके विचारसे दूर रहना चाहता है; उसकी वह मान्यता झूठी है। हाँ, चैतन्यके ध्यानमें एकाग्र हो गया हो तो पर-द्रव्यका चिंतवन छूट जाये; परंतु अज्ञानी तो 'परको जाननेवाला ज्ञानका उपयोग ही बंधका कारण है' ऐसा मानता है। जितना अकषाय वीतरागभाव हुआ उतने संवर-निर्जरा हैं, और जितने रागादिभाव हैं उतने आस्त्रव-बंध हैं। यदि परका ज्ञान बंधका कारण हो तो केवलीभगवान तो समस्त पदार्थोंको जानते हैं, तथापि उनको बंधन किंचित्मात्र नहीं होता। उनको राग-द्वेष नहीं हैं इसलिये बंधन नहीं है। उसी प्रकार सर्व जीवको ज्ञान बंधका कारण नहीं है।

⌘

द्रव्य सकळनी स्वतंत्रता जग मांहि गजावनहारा,
वीरकथित स्वात्मानुभूतिनो पंथ प्रकाशनहारा,
गुरुजी जन्म तमारो रे जगतने आनंद करनारो.

स्वर्णपुरे धर्मायतनो सौ गुरुगुणकीर्तन गातां;
स्थळ-स्थळमां 'भगवान आत्मना' भणकारा संभळातां,
कण-कण पुरुषार्थ प्रेरे
गुरुजी आत्म अजवाळे.

⌘

श्री समयसार गाथा - २०६

अब इस गाथामें इसी उपदेशको विशेष कहते हैं :-

इसमें सदा रतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट रे !
इससे हि बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे।।२०६।

गाथार्थ :- (हे भव्य प्राणी !) तू [एतस्मिन्] इसमें (-ज्ञानमें) [नित्यं] नित्य [रतः] रत अर्थात् प्रीतिवाला हो, [एतस्मिन्] इसमें [नित्यं] नित्य [संतुष्टः भव] संतुष्ट हो और [एतेन] इससे [तुप्तः भव] तृप्त हो, (ऐसा करनेसे) [तव] तुझे [उत्तमं सौख्यम्] उत्तम सुख [भविष्यति] होगा।

टीका :- (हे भव्य !) इतना ही सत्य (-परमार्थस्वरूप) आत्मा है जितना यह ज्ञान है - ऐसा निश्चय करके ज्ञानमात्रमें ही सदा ही रति (-प्रीति, रुचि) प्राप्त कर; इतना ही सत्य कल्याण है जितना यह ज्ञान है - ऐसा निश्चय करके ज्ञानमात्रसे ही सदा ही संतोषको प्राप्त कर; इतना ही सत्य अनुभव करने योग्य है जितना यह ज्ञान है - ऐसा निश्चय करके ज्ञानमात्रसे ही सदा ही तृप्ति प्राप्त कर। इसप्रकार सदा ही आत्मामें रत, आत्मामें संतुष्ट और आत्मासे तृप्त ऐसे तुझको वचनगोचर सुख प्राप्त होगा; और उस सुखको उसी क्षण तू ही स्वयमेव देखेगा, दूसरोंसे मत पूछ। (वह अपनेको ही अनुभवगोचर है, दूसरोंसे क्यों पूछना पड़ेगा ?)

भावार्थ :- ज्ञानमात्र आत्मामें लीन होना, उसीसे संतुष्ट होना और उसीसे तृप्त होना परम ध्यान है। उससे वर्तमान आनंदका अनुभव होता है और थोड़े ही समयमें ज्ञानानंदस्वरूप केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है। ऐसा करनेवाला पुरुष ही उस सुखको जानता है, दूसरेका इसमें प्रवेश नहीं है।

⌘

श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक - ७५१

ववाणिया, फागुन वदी ११, रवि, १९५३

ॐ सर्वज्ञाय नमः

`आत्मसिद्धि'में कहे हुए समकितके प्रकारोंका विशेषार्थ जाननेकी इच्छा संबंधी पत्र मिला है।

आत्मसिद्धिमें तीन प्रकारके समकित उपदिष्ट हैं -

(१) आप्तपुरुषके वचनकी प्रतीतिरूप, आज्ञाकी अपूर्व रुचिरूप, स्वच्छंदनिरोधतासे आप्तपुरुषकी भक्तिरूप, यह समकितका पहला प्रकार हैं।

(२) परमार्थका स्पष्ट अनुभवांशसे प्रतीति यह समकितका दूसरा प्रकार है।

(३) निर्विकल्प परमार्थ अनुभव यह समकितका तीसरा प्रकार है।

पहला समकित दूसरे समकितका कारण है। दूसरा समकित तीसरे समकितका कारण है। वीतरागने तीनों समकित मान्य किये हैं। तीनों समकित उपासना करने योग्य हैं, सत्कार करने योग्य हैं; और भक्ति करने योग्य हैं।

केवलज्ञान उत्पन्न होनेके अंतिम समय तक वीतरागने सत्पुरुषके वचनोंके आलंबनका विधान किया है; अर्थात् बारहवें क्षीणमोह गुणस्थानकपर्यंत श्रुतज्ञानसे आत्माके अनुभवको निर्मल करते करते उस निर्मलताकी संपूर्णता प्राप्त होनेपर `केवलज्ञान' उत्पन्न होता है। उसके उत्पन्न होनेके पहले समय तक सत्पुरुषका उपदिष्ट मार्ग आधारभूत है, यह जो कहा है वह निःसंदेह सत्य है।

⌘

`स्वानुभूतिदर्शन' - पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा - प्रश्न - ३५१-३५२

प्रश्न :- वनचामृतमें आता है कि स्वभावकी बात सुनते ही हृदयमें आरपार उतर जाय, तो उसमें क्या कहना है ?

समाधान :- यह और ही कुछ कह रहे हैं और में तो इन विभावोंके साथ एकत्वको प्राप्त हो रहा हूँ ! - इसप्रकार भीतरसे स्वरूपकी ओर जानेका कोई निराला ही झटका लगे जो आरपार उतर जाय। अबतक यह परिभ्रमण किया और आज भी उसीमें खड़ा हूँ - ऐसा झटका लगे और अंतरसे स्वसन्मुखताका पुरुषार्थ उभर पड़े। गुरुदेवकी वाणीका प्रबल निमित्त था; वाणी सुननेपर अपूर्वता लगे, तो भेदज्ञान हो जाय ऐसी चोट लगे कि अंतरसे स्वयं भिन्न हो जाय। जिसका उपादान तैयार हो उसे भेदज्ञान हुए बिना नहीं रहता, वैसा उनका निमित्त था।

प्रश्न :- कषायकी मंदता हो वहाँ शांतिका वेदन हो जाता है तथा पंचेन्द्रियके विषयोंमें सुख-शांतिका आभास होता है, आत्मामें सुख है ऐसा नहीं लगता; तो आगे कैसे बढ़ा जाय ?

समाधान :- एक आत्माके सिवा बाह्यमें कहीं सुख नहीं है। इतनी दृढ़ता और प्रतीति अपने अंतरमें आ जाय तो परिणति स्वसन्मुख हो जाय। ज्ञायककी महिमा आये तथा आत्मामें ही सुख है, अन्यत्र कहीं सुख नहीं है, ऐसा प्रतीतिका बल आये तभी पुरुषार्थ स्वसन्मुख होता है। अनादिका अभ्यास होनेसे उसे बाह्यमें शांति लगती है और वह जहाँ तहाँ रुक जाता है। कुछ न हो - विकल्प भी न आयें - और मात्र चैतन्यका अस्तित्व हो, वही मुझे चाहिये, उसीमें सब भरा है - ऐसी प्रतीतिका बल अंतरसे आये तो आगे बढ़ता है।

क्षमापना

हे भगवान ! मैं बहुत भूल गया, मैंने आपके अमूल्य वचनोंको ध्यानमें लिया नहीं। आपके कहे हुए अनुपम तत्त्वोंका मैंने विचार किया नहीं। आपके प्रणीत किये हुए उत्तम शीलका सेवन किया नहीं। आपकी कही हुई दया, शांति, क्षमा और पवित्रताको मैंने पहचाना नहीं। हे भगवान ! मैं भूला, भटका, घूमा-फिरा और अनंत संसारकी विडंबनामें पड़ा हूँ। मैं पापी हूँ। मैं बहुत मदोन्मत और कर्मरजसे मलिन, हूँ। हे परमात्मन् ! आपके कहे हुए तत्त्वोंके बिना मेरा मोक्ष नहीं। मैं निरंतर प्रपंचमें पड़ा हूँ। अज्ञानसे अंध हुआ हूँ, मुझमें विवेकशक्ति नहीं है और मैं मूढ हूँ, मैं निराश्रित हूँ, अनाथ हूँ। नीरागी परमात्मन् ! मैं अब आपकी, आपके धर्मकी और आपके मुनियोंकी शरण लेता हूँ। मेरे अपराधोंका क्षय होकर मैं उन सब पापोंसे मुक्त होऊँ यह मेरी अभिलाषा है। पूर्वकृत पापोंका मैं अब पश्चाताप करते हूँ। ज्यों-ज्यों मैं सूक्ष्म विचारसे गहरा उतरता हूँ त्यों-त्यों आपके तत्त्वोंके चमत्कार मेरे स्वरूपका प्रकाश करते हैं। आप नीरागी, निर्विकारी, सच्चिदानंदस्वरूप। समजानंदी, अनंतज्ञानी, अनंतदर्शी और त्रैलोक्यप्रकाशक हैं। मैं मात्र अपने हितके लिये आपकी साक्षीमें क्षमा चाहता हूँ। एक पल भी आपके कहे हुए तत्त्वोंकी शंका न हो, आपके बताये हुए मार्गमें अहोरात्र मैं रहूँ, यही मेरी आकांक्षा और वृत्ति हो ! हे सर्वज्ञ भगवन ! आपसे मैं विशेष क्या कहूँ ? आपसे कुछ अज्ञात नहीं है। मात्र पश्चातापसे मैं कर्मजन्य पापकी क्षमा चाहता हूँ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

⌘

प्रणिपात स्तुति

हे परमाकृपालु देव ! जन्म, जरा, मरणादि सर्व दुःखोनो अत्यंत क्षय करनारो एवो वीतराग पुरुषनो मूळ मार्ग आप श्रीमद् अनंत कृपा करी मने आप्यो, ते अनंत उपकारनो प्रतिउपकार वाळवा हूँ सर्वथा असमर्थ छुं; वळी आप श्रीमत् कंई पण लेवाने सर्वथा निःस्पृह छो; जेथी हूँ मन, वचन, कायानी एकाग्रताथी आपनां चरणारविन्दमां नमस्कार करूँ छुं। आपनी परमभक्ति अने वीतरागपुरुषना मूळधर्मनी उपासना मारा हृदयने विषे भवपर्यंत अखं जाग्रत रहो एटलुं मागुं छुं ते सफळ थाओ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

⌘

वीतरागका कहा हुआ परम शांत रसमय धर्म पूर्ण सत्य है, ऐसा निश्चय रखना। जीवकी अनधिकारिताके कारण तथा सत्पुरुषके योगके बिना समझमें नहीं आता; तो भी जीवके संसाररोगको मिटानेके लिये उस जैसा दूसरा कोई पूर्ण हितकारी औषध नहीं है, ऐसा वारंवार चिंतन करना।

यह परम तत्त्व है, इसका मुझे सदैव निश्चय रहो; यह यथार्थ स्वरूप मेरे हृदयमें प्रकाश करो, और जन्ममरणादि बंधनसे अत्यंत निवृत्ति होओ ! निवृत्ति होओ !

हे जीव ! इस क्लेशरूप संसारसे विरत हो, विरत हो; कुछ विचार कर, प्रमाद छोड़कर जागृत हो ! जागृत हो !! नहीं तो रत्नचिंतामणि जैसी यह मनुष्यदेह निष्फल जायेगी।

हे जीव ! अब तुझे सत्पुरुषकी आज्ञा निश्चयसे उपासने योग्य है।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

श्री वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट उपलब्ध प्रकाशन (हिन्दी)

	ग्रंथ का नाम एवं विवरण	मूल्य०१
	जिणसासणं सव्वं (ज्ञानीपुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन)	०८-००
०२	द्रव्यदृष्टिप्रकाश (तीनों भाग - पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजीके पत्र एवं तत्त्वचर्चा)	३०-००
०३	दूसरा कुछ न खोज (प्रत्यक्ष सत्पुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन)	०६-००
०४	दंसणमूलो धम्मो (सम्यक्त्व महिमा विषयक आगमोंके आधार)	०६-००
०५	निर्भ्रांत दर्शनकी पगडंडी (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	१०-००
०६	परमागमसार (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके १००८ वचनामृत)	
०७	प्रयोजन सिद्धि (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	०४-००
०८	मूलमें भूल (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके विविध प्रवचन)	०८-००
०९	विधि विज्ञान (विधि विषयक वचनामृतोंका संकलन)	१०-००
१०	सम्यक्ज्ञानदीपिका (ले. श्री धर्मदासजी क्षुल्लक)	१५-००
११	तत्त्वानुशीलन (भाग १-२-३) (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	२०-००
१२	अनुभव प्रकाश (ले. पूज्य श्री दीपचंदजी कासलीवाल)	
१३	ज्ञानामृत (श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथमें से चयन किये गये वचनामृत)	
१४	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-२५४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	
१५	सम्यग्दर्शनके सर्वोत्कृष्ट निवासभूत छः पदोंका अमृत पत्र (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-४९३ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	१८-००
१६	आत्मयोग (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-५६९, ४९१, ६०९ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२०-००
१७	परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-१९५, १२८, २६४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२०-००
१८	अनुभव संजीवनी (पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा लिखे गये वचनामृतोंका संकलन)	१५०-००
१९	धन्य आराधना (श्रीमद् राजचंद्रजीकी अंतरंग अध्यात्म दशा पर पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा विवेचन)	२५-००
२०	सिद्धपदका सर्वश्रेष्ठ उपाय	२५-००
२१	कुटुंब प्रतिबंध (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-१०३, ३३२, ३७४, ५१०, ५२८, एवं ५३७ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२५-००

વીતરાગ સત્‌સાહિત્ય પ્રસારક ટ્રસ્ટ
ઉપલબ્ધ પ્રકાશન (ગુજરાતી)

	ગ્રંથનું નામ તેમજ વિવરણ	મૂલ્ય
૦૧	ગુરુગુણ સંભારણા (પૂજ્ય બહેનશ્રીના શ્રીમુખેથી સ્ફુરિત ગુરુભક્તિ)	૦૫-૦૦
૦૨	જિણસાસણં સવ્વં (જ્ઞાનીપુરુષ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૮-૦૦
૦૩	દ્વાદશ અનુપ્રેક્ષા (શ્રીમદ્ ભગવત્ કુંદકુંદાચાર્યદેવ વિરચિત)	૦૨-૦૦
૦૪	દ્રવ્યદૃષ્ટિપ્રકાશ ભાગ-૩ (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદ્રજી સોગાનીજીની તત્ત્વચર્ચા)	૦૪-૦૦
૦૫	દસલક્ષણ ધર્મ (ઉત્તમ ક્ષમાદિ દસ ધર્મો પર પૂ. ગુરુદેવશ્રીનાં પ્રવચનો)	૦૬-૦૦
૦૬	ધન્ય આરાધના (શ્રીમદ્ રાજચંદ્રજીની અંતરંગ અધ્યાત્મ દશા ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા વિવેચન)	૧૦-૦૦
૦૭	નિર્ભ્રાંત દર્શનની કેડીએ (લે. પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ)	૧૦-૦૦
૦૮	પરમાત્મપ્રકાશ (શ્રીમદ્ યોગીન્દ્રદેવ વિરચિત)	૧૫-૦૦
૦૯	પરમાગમસાર (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના ૧૦૦૮ વચનામૃત)	૧૧-૨૫
૧૦	પ્રવચન નવનીત ભાગ-૧ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો)	અનુપલબ્ધ
૧૧	પ્રવચન નવનીત ભાગ-૨ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૧૨	પ્રવચન નવનીત ભાગ-૩ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ નય ઉપર ખાસ પ્રવચનો)	૩૫-૦૦
૧૩	પ્રવચન નવનીત ભાગ-૪ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ શક્તિઓ ઉપર ખાસ પ્રવચનો)	૭૫-૦૦
૧૪	પ્રવચન પ્રસાદ ભાગ-૧-૨ (પંચાસ્તિકાયસંગ્રહ પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના પ્રવચનો)	૬૫-૦૦
૧૫	પ્રયોજન સિદ્ધિ (લે. પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ)	૦૩-૦૦
૧૬	વિધિ વિજ્ઞાન (વિધિ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૭-૦૦
૧૭	ભગવાન આત્મા (દ્રવ્યદૃષ્ટિ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૭-૦૦
૧૮	પથ પ્રકાશ (માર્ગદર્શન વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૬-૦૦
૧૯	સમ્યક્‌જ્ઞાનદીપિકા (લે. શ્રી ધર્મદાસજી ક્ષુલ્લક)	૧૫-૦૦
૨૦	આધ્યાત્મિક પત્ર (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદ્રજી સોગાનીજીના પત્રો)	૦૨-૦૦
૨૧	અધ્યાત્મ સંદેશ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના વિવિધ પ્રવચનો)	પ્રેસમાં
૨૨	જ્ઞાનામૃત (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર ગ્રંથમાંથી ચૂંટેલા વચનામૃતો)	૦૬-૦૦
૨૩	બીજું કાંઈ શોધ મા (પ્રત્યક્ષ સત્પુરુષ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૬-૦૦
૨૪	મુમુક્ષુતા આરોહણ ક્રમ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૨૫૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૧૫-૦૦
૨૫	સમ્યગ્દર્શનના નિવાસના સર્વોત્કૃષ્ટ નિવાસભુત છ પદનો અમૃત પત્ર (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૪૯૩ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦

૨૬	આત્મયોગ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૫૬૯, ૪૯૧, ૬૦૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૭	પરિભ્રમણના પ્રત્યાખ્યાન (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૯૫, ૧૨૮ તથા ૨૬૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૮	અનુભવ સંજીવની (પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા લિખિત વચનામૃતોનું સંકલન)	૧૫૦-૦૦
૨૯.	સિદ્ધપદકા સર્વશ્રેષ્ઠ ઉપાય (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૪૭, ૧૯૪, ૨૦૦, ૫૧૧, ૫૬૦,તથા ૮૧૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૩૦.	કુટુંબ પ્રતિબંધ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક- ૧૦૩, ૩૩૨, ૫૧૦, ૫૨૮, ૫૩૭ તથા ૩૭૪૫૨ પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫-૦૦

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्टमें से प्रकाशित हुई पुस्तकोंकी प्रत संख्या

०१	प्रवचनसार (गुजराती)	१५००
०२	प्रवचनसार (हिन्दी)	४२००
०३	पंचास्तिकायसंग्रह (गुजराती)	१०००
०४	पंचास्तिकाय संग्रह (हिन्दी)	२५००
०५	समयसार नाटक (हिन्दी)	३०००
०६	अष्टपाहुड (हिन्दी)	२०००
०७	अनुभव प्रकाश	२१००
०८	परमात्मप्रकाश (गुजराती)	४१००
०९	समयसार कलश टीका (हिन्दी)	२०००
१०	आत्मअवलोकन	२०००
११	समाधितंत्र (गुजराती)	२०००
१२	बृहद द्रव्यसंग्रह (हिन्दी)	३०००
१३	ज्ञानामृत (गुजराती)	१०,०००
१४	योगसार	२०००
१५	अध्यात्मसंदेश (गुजराती)	२०००
१६	पद्मनंदीपंचविंशती	३०००
१७	समयसार (गुजराती)	३१००
१८	समयसार (हिन्दी)	२५००
१९	अध्यात्मिक पत्रो (पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी द्वारा लिखित)	३०००
२०	द्रव्यदृष्टि प्रकाश (गुजराती)	१०,०००
२१	द्रव्यदृष्टि प्रकाश (हिन्दी)	६६००
२२	पुरुषार्थसिद्दिउपाय (गुजराती)	६१००
२३	क्रमबद्धपर्याय (गुजराती)	८०००
२४	अध्यात्मपराग (गुजराती)	३०००
२५	धन्य अवतार (गुजराती)	३७००
२६	धन्य अवतार (हिन्दी)	८०००
२७	परमामगसार (गुजराती)	५०००
२८	परमागमसार (हिन्दी)	४०००
२९	वचनामृत प्रवचन भाग-१-२-३-४ (गुजराती)	५०००

३०	निर्भृंत दर्शननी केडीए (गुजराती)	४५००
३१	निर्भृंत दर्शनकी पगडंडी (हिन्दी)	७०००
३२	अनुभव प्रकाश (हिन्दी)	२०००
३३	गुरुगुण संभारणा (गुजराती)	३०००
३४	जिण सासणं सव्वं (गुजराती)	२०००
३५	जिण सासणं सव्वं (हिन्दी)	२०००
३६	द्वादश अनुप्रेक्षा (गुजराती)	२०००
३७	दस लक्षण धर्म (गुजराती)	२०००
३८	धन्य आराधना (गुजराती)	१०००
३९	धन्य आराधना (हिन्दी)	१५००
४०	प्रवचन नवनीत भाग-१-४ (गुजराती)	५८५०
४१	प्रवचन प्रसाद भाग-१-२ (गुजराती)	१५००
४२	पथ प्रकाश (गुजराती)	२०००
४३	प्रयोजन सिद्धि (गुजराती)	३५००
४४	प्रयोजन सिद्धि (हिन्दी)	२५००
४५	विधि विज्ञान (गुजराती)	२०००
४६	विधि विज्ञान (हिन्दी)	२०००
४७	भगवान आत्मा (गुजराती)	२०००
४८	सम्यक्ज्ञानदीपिका (गुजराती)	१०००
४९	सम्यक्ज्ञानदीपिका (हिन्दी)	१५००
५०	तत्त्वानुशीलन (गुजराती)	४०००
५१	तत्त्वानुशीलन (हिन्दी)	२०००
५२	बीजुं कांई शोध मा (गुजराती)	४०००
५३	दूसरा कुछ न खोज (हिन्दी)	२०००
५४	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (गुजराती)	२५००
५५	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (हिन्दी)	३५००
५६	अमृत पत्र (गुजराती)	२०००
५७	अमृत पत्र (हिन्दी)	२०००
५८	परिभ्रमणना प्रत्याख्यान (गुजराती)	१५००
५९	परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (हिन्दी)	२०००
६०	आत्मयोग (गुजराती)	१५००
६१	आत्मयोग (हिन्दी)	२०००
६२	अनुभव संजीवनी (गुजराती)	१०००

६३	अनुभव संजीवनी (हिन्दी)	१०००
६४	ज्ञानामृत (हिन्दी)	१५००
६५	सिद्धपदका सर्वश्रेष्ठ उपाय (गुजराती)	१५००
६६	कुटुंब प्रतिबंध (गुजराती)	१५००
६५	सिद्धपदका सर्वश्रेष्ठ उपाय (हिन्दी)	१५००
६६	कुटुंब प्रतिबंध (हिन्दी)	१५००

श्री वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
उपलब्ध प्रकाशन (हिन्दी)

	ग्रंथ का नाम एवं विवरण	मूल्य
०१	जिणसासणं सव्वं (ज्ञानीपुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन)	०८-००
०२	द्रव्यदृष्टिप्रकाश (तीनों भाग - पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजीके पत्र एवं तत्त्वचर्चा)	३०-००
०३	दूसरा कुछ न खोज (प्रत्यक्ष सत्पुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन)	०६-००
०४	दंसणमूलो धम्मो (सम्यक्त्व महिमा विषयक आगमोंके आधार)	०६-००
०५	निर्भ्रांत दर्शनकी पगडंडी (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	१०-००
०६	परमागमसार (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके १००८ वचनामृत)	
०७	प्रयोजन सिद्धि (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	०४-००
०८	मूलमें भूल (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके विविध प्रवचन)	०८-००
०९	विधि विज्ञान (विधि विषयक वचनामृतोंका संकलन)	१०-००
१०	सम्यक्ज्ञानदीपिका (ले. श्री धर्मदासजी क्षुल्लक)	१५-००
११	तत्त्वानुशीलन (भाग १-२-३) (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	२०-००
१२	अनुभव प्रकाश (ले. दीपचंदजी कासलीवाल)	
१३	ज्ञानामृत (श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथमें से चयन किये गये वचनामृत)	
१४	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-२५४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	
१५	सम्यग्दर्शनके सर्वोत्कृष्ट निवासभूत छः पदोंका अमृत पत्र (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-४९३ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	१८-००
१६	आत्मयोग (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-५६९, ४९१, ६०९ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२०-००
१७	परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-१९५, १२८, २६४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२०-००
१८	अनुभव संजीवनी (पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा लिखे गये वचनामृतोंका संकलन)	१५०-००
१९	धन्य आराधना (श्रीमद् राजचंद्रजीकी अंतरंग अध्यात्म दशा पर पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा विवेचन)	
२०	सिद्धपदका सर्वश्रेष्ठ उपाय	२५.००
२१	कुटुम्ब प्रतिबंध	२५.००

વીતરાગ સત્‌સાહિત્ય પ્રસારક ટ્રસ્ટ

ઉપલબ્ધ પ્રકાશન (ગુજરાતી)

	ગ્રંથનું નામ તેમજ વિવરણ	મૂલ્ય
૦૧	ગુરુગુણ સંભારણા (પૂજ્ય બહેનશ્રીના શ્રીમુખેથી સ્ફુરિત ગુરુભક્તિ)	૦૫-૦૦
૦૨	જિણસાસણં સવ્વં (જ્ઞાનીપુરુષ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૮-૦૦
૦૩	દ્વાદશ અનુપ્રેક્ષા (શ્રીમદ્ ભગવત્ કુંદકુંદાચાર્યદેવ વિરચિત)	૦૨-૦૦
૦૪	દ્રવ્યદૃષ્ટિપ્રકાશ ભાગ-૩ (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદ્રજી સોગાનીજીની તત્ત્વચર્ચા)	૦૪-૦૦
૦૫	દસલક્ષણ ધર્મ (ઉત્તમ ક્ષમાદિ દસ ધર્મો પર પૂ. ગુરુદેવશ્રીનાં પ્રવચનો)	૦૬-૦૦
૦૬	ધન્ય આરાધના (શ્રીમદ્ રાજચંદ્રજીની અંતરંગ અધ્યાત્મ દશા ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા વિવેચન)	૧૦-૦૦
૦૭	નિર્ભ્રાંત દર્શનની કેડીએ (લે. પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ)	૧૦-૦૦
૦૮	પરમાત્મપ્રકાશ (શ્રીમદ્ યોગીન્દ્રદેવ વિરચિત)	૧૫-૦૦
૦૯	પરમાગમસાર (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના ૧૦૦૮ વચનામૃત)	૧૧-૨૫
૧૦	પ્રવચન નવનીત ભાગ-૧ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો)	અનુપલબ્ધ
૧૧	પ્રવચન નવનીત ભાગ-૨ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૧૨	પ્રવચન નવનીત ભાગ-૩ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ નય ઉપર ખાસ પ્રવચનો)	૩૫-૦૦
૧૩	પ્રવચન નવનીત ભાગ-૪ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ શક્તિઓ ઉપર ખાસ પ્રવચનો)	૭૫-૦૦
૧૪	પ્રવચન પ્રસાદ ભાગ-૧-૨ (પંચાસ્તિકાયસંગ્રહ પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના પ્રવચનો)	૬૫-૦૦
૧૫	પ્રયોજન સિદ્ધિ (લે. પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ)	૦૩-૦૦
૧૬	વિધિ વિજ્ઞાન (વિધિ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૭-૦૦
૧૭	ભગવાન આત્મા (દ્રવ્યદૃષ્ટિ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૭-૦૦
૧૮	પથ પ્રકાશ (માર્ગદર્શન વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૬-૦૦
૧૯	સમ્યક્‌જ્ઞાનદીપિકા (લે. શ્રી ધર્મદાસજી ક્ષુલ્લક)	૧૫-૦૦
૨૦	આધ્યાત્મિક પત્ર (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદ્રજી સોગાનીજીના પત્રો)	૦૨-૦૦
૨૧	અધ્યાત્મ સંદેશ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના વિવિધ પ્રવચનો)	પ્રેસમાં
૨૨	જ્ઞાનામૃત (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર ગ્રંથમાંથી ચૂંટેલા વચનામૃતો)	૦૬-૦૦
૨૩	બીજું કાંઈ શોધ મા (પ્રત્યક્ષ સત્પુરુષ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન)	૦૬-૦૦
૨૪	મુમુક્ષુતા આરોહણ ક્રમ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૨૫૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૧૫-૦૦
૨૫	સમ્યગ્‌દર્શનના નિવાસના સર્વોત્કૃષ્ટ નિવાસભુત છ પદનો અમૃત પત્ર (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૪૯૩ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦

૨૬	આત્મયોગ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૫૬૯, ૪૯૧, ૬૦૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૭	પરિભ્રમણના પ્રત્યાખ્યાન (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૯૫, ૧૨૮ તથા ૨૬૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૮	અનુભવ સંજીવની (પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા લિખિત વચનામૃતોનું સંકલન)	૧૫૦-૦૦
૨૯	સિદ્ધપદનો સર્વશ્રેષ્ઠ ઉપાય (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૪૭, ૧૯૪, ૨૦૦ ૫૧૧, ૫૬૦ તથા ૮૧૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫.૦૦
૩૦	કુટુંબ પ્રતિબંધ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૦૩, ૩૩૨, ૫૧૦, ૫૨૮, ૫૩૭ તથા ૩૭૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫.૦૦

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्टमें से प्रकाशित हुई पुस्तकोंकी प्रत संख्या

०१	प्रवचनसार (गुजराती)	१५००
०२	प्रवचनसार (हिन्दी)	४२००
०३	पंचास्तिकायसंग्रह (गुजराती)	१०००
०४	पंचास्तिकाय संग्रह (हिन्दी)	२५००
०५	समयसार नाटक (हिन्दी)	३०००
०६	अष्टपाहुड (हिन्दी)	२०००
०७	अनुभव प्रकाश	२१००
०८	परमात्मप्रकाश	४१००
०९	समयसार कलश टीका (हिन्दी)	२०००
१०	आत्मअवलोकन	२०००
११	समाधितंत्र (गुजराती)	२०००
१२	बृहद द्रव्यसंग्रह (हिन्दी)	३०००
१३	ज्ञानामृत (गुजराती)	१०,०००
१४	योगसार	२०००
१५	अध्यात्मसंदेश	२०००
१६	पद्मनंदीपंचविंशती	३०००
१७	समयसार	३१००
१८	समयसार (हिन्दी)	२५००
१९	अध्यात्मिक पत्रो (पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी द्वारा लिखित)	३०००
२०	द्रव्यदृष्टि प्रकाश (गुजराती)	१०,०००
२१	द्रव्यदृष्टि प्रकाश (हिन्दी)	६६००
२२	पुरुषार्थसिद्दिउपाय (गुजराती)	६१००
२३	क्रमबद्धपर्याय (गुजराती)	८०००
२४	अध्यात्मपराग (गुजराती)	३०००
२५	धन्य अवतार (गुजराती)	३७००
२६	धन्य अवतार (हिन्दी)	८०००
२७	परमामगसार (गुजराती)	५०००
२८	परमागमसरा (हिन्दी)	४०००
२९	वचनामृत प्रवचन भाग-१-२	५०००
३०	निर्भ्रांत दर्शननी केडीए (गुजराती)	४५००
३१	निर्भ्रांत दर्शनकी पगडंडी (हिन्दी)	७०००

३२	अनुभव प्रकाश (हिन्दी)	२०००
३३	गुरुगुण संभारणा (गुजराती)	३०००
३४	जिण सासणं सव्वं (गुजराती)	२०००
३५	जिण सासणं सव्वं (हिन्दी)	२०००
३६	द्वादश अनुप्रेक्षा (गुजराती)	२०००
३७	दस लक्षण धर्म (गुजराती)	२०००
३८	धन्य आराधना (गुजराती)	१०००
३९	धन्य आराधना (हिन्दी)	१५००
४०	प्रवचन नवनीत भाग-१-४	५८५०
४१	प्रवचन प्रसाद भाग-१-२	१५००
४२	पथ प्रकाश (गुजराती)	२०००
४३	प्रयोजन सिद्धि (गुजराती)	३५००
४४	प्रयोजन सिद्धि (हिन्दी)	२५००
४५	विधि विज्ञान (गुजराती)	२०००
४६	विधि विज्ञान (हिन्दी)	२०००
४७	भगवान आत्मा (गुजराती)	२०००
४८	सम्यक्ज्ञानदीपिका (गुजराती)	१०००
४९	सम्यक्ज्ञानदीपिका (हिन्दी)	१५००
५०	तत्त्वानुशीलन (गुजराती)	४०००
५१	तत्त्वानुशीलन (हिन्दी)	२०००
५२	बीजुं कांई शोध मा (गुजराती)	४०००
५३	दूसरा कुछ न खोज (हिन्दी)	२०००
५४	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (गुजराती)	२५००
५५	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (हिन्दी)	३५००
५६	अमृत पत्र (गुजराती)	२०००
५७	अमृत पत्र (हिन्दी)	२०००
५८	परिभ्रमणना प्रत्याख्यान (गुजराती)	१५००
५९	परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (हिन्दी)	२०००
६०	आत्मयोग (गुजराती)	१५००
६१	आत्मयोग (हिन्दी)	२०००
६२	अनुभव संजीवनी (गुजराती)	१०००
६३	अनुभव संजीवनी (हिन्दी)	१०००
६४	ज्ञानामृत (हिन्दी)	१५००